



सूक्ति सचयन



# सूक्ति संचयन

धीरन्धरे

सकलनकर्ता

हयचन्द्र

भूमिका

शाचार्य काका कालेलकर

पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली

प्रकाशक  
पूर्वोदय प्रकाशन  
८ नेताजी सुभाष मार्ग  
दिल्ली-६

●  
प्रथम संस्करण १९६५

●  
मूल्य तीन रुपये

●  
मुद्रक  
प्रवेदा इलेक्ट्रिक प्रेस  
८००/१२ राजीवगढ़ी  
दिल्ली ।

## भूमिका

किसी घाद हमारे की घासी हवा से निकल कर खुली हवा में घाते जो प्रसन्नता होती है वही घाह्लाद हम जनेद्रजी के वचन पढ़कर पाते हैं । बहुत स लेखक, उनकी घानी चाह जितनी रोचक क्यों न हो ओते हुए विचार ही व्यक्त करते हैं । फिर वे विचार अपने देश के परम्परागत हों या किसी पश्चिमी गुट के सिखाय हुये हों । हमारी घगावत भी निजी अनुभव से पदा हुई कम दिसती है । अय देशों के बागी विचारका के विचार अयवा उद्गार अपनी भाषा में भाकर ही हम अपने को मौलिक और बहादुर समझ लेते हैं । ऐसे लोगों के वचनों का गुजन कानों को असरता है । किन्तु जनेद्रजी मौलिक विचारक हैं । पूव और पश्चिम का अध्ययन जरूर उन्होंने किया है अग्रजी साहित्य का और उसके दाली का प्रभाव भी उन पर काफी है । पर जनेन्द्रजी की घासी उनके चिन्तन में से पैदा हुई उनकी निजी दाली है । कभी-कभी मेरे जमा को वह अमरती भी है । लेकिन विचारों की मौलिकता

के कारण और सही की चिन्तन शीलता के कारण जैनेन्द्रजी को पढ़ते प्रपचा सुनते हमेंगा आनन्द आता है । और वे क्या बहना चाहते हैं ठीक समझन के लिए मन उत्सुक भी बनता है ।

जनेन्द्रजी का विद्यालय माहिल्य आश्रम में था पढ़ने का प्रवसर मुझे नहीं मिला है । तबिन अभी अभी उनका प्रप दत्ता समय और हम , तब जनेन्द्रजी के चिन्तन का सार प्रपचा मस्तिष्क पाने श्रितना सन्ताप हुआ और विद्यालय हो गया कि जैनेन्द्रजी एक मौलिक चिन्तक और विचारक हैं । उन्होंने जीवन के सब क्षेत्रों का गहरा परिचय पाया है और हर एक क्षेत्र में उन्हें समाज को कुछ देना भी है ।

मया विचार हर कोई बकूल करेगा ही एसी प्रपेगा थी जैनेन्द्रजी भी नहीं रहते होंगे । नये डग से सोचने के लिए पाठ्य तयार हो गये तो जैनेन्द्रजी का प्रयत्न गफल हुआ । वे कहेंगे धत्री स्वयंभू रूप से और मौलिक डग से सोचने के लिये तयार तो होरह्य फिर सोचने-सोचते प्रपच तई पुराने नियम पर आग आ पढ़नेको भी मुझे हर्जा नहीं । फिर वह विचार आर का निजी साक्षा हुआ होगा छोड़ा हुआ नहीं । उस विचार के पीछे आग प्रपना अविनायक मकर रहेंगे प्रपना मरे लिये बग है । जैनेन्द्रजी का विद्यालय है कि नये ह । और अनुभव के बल पर सोचने के लिए जब हमारे सोच संसार होंगे तब उनके विचारों में प्रपम ज्ञान प्रकट होगा और आ में पारमाविश्वता ।

एग डग में सोचने-सोचने जैनेन्द्रजी श्रिग मनीत्र पर पाठ्य है प्रपचा विचार के श्रिग डग को उन्होंने प्रपनाया है, उग के

अपने उपन्यासों में, निबंधों और सम्भाषणों में भी बलात्मक ढंग से व्यक्त करते हैं। इसी में उनके साहित्य की ताजगी है। और वही उनका आकर्षण है।

प्रस्तुत पुस्तक जेनेद्रजी के वाङ्मय से चूनी हुई उनकी सूक्तियों का संग्रह अथवा संचयन है। इसमें वा हरेक वचन जेनेद्रजी का होते हुए भी, मैं कहूंगा यह पुस्तक जेनेद्रजी की नहीं है। संचयनकार उनके शिष्य की है।

मेरा दृढ़ अभिप्राय है कि वचनों का संग्रह एक मौलिक चीज बनती है जिससे पीछे केवल मूल अर्थकार का ही नहीं किन्तु संचयनकार का व्यक्तित्व प्रकट होता है। आप किसी जगल में घूमते घूमते वनस्पति का निरीक्षण कीजिये वहा वनदेवी स्वयं स्वच्छन्द विहार करती आपको दगन दगी आप से बातें भी करेगी आप अगर जीवन रसिक और अनुभव समृद्ध हगि तो वनदेवी प्रसन्न होकर अभ्यर्चना भी करेगी। किन्तु प्राकृतिक वन सोभा को छोड़कर अगर आप किसी मनुष्य निर्मित उपवन अथवा उद्यान में गये तो आपको वनस्पति के दर्शन का आनन्द तो मिलगा लेकिन वहा वनदेवी की आरप्यक सस्कृति नहीं मिलेगी। उद्यान में आप का आतिथ्य वनदेवी की ओर से नहीं होगा किन्तु उद्यान की रचना करने वाले रसिक मानव का होगा। आप अभिनन्दन करेंगे तो उस प्रवृत्ति माता का नहीं किन्तु उद्यान के सयोजक का फिर चाहे वह मातृक हो या माती इससे भी आगे धगीचे में न जात हुए अगर आपने माती का बनाया हुआ गुलास्ता हाथ में से लिया तो उसमें प्रधान उप



स्थिति होगी पोथों पर से फूल तोड़ने वाले और उनकी पसंदगी और रचना करने वाले माताकार की ।

इसलिये कहता हूँ कि सचयन की खूबी उसकी जवाबदारी और उद्यम श्रेय मूल अर्थकार का नहीं, बचनकारका नहीं, किंतु सचयन और रचना करने वाले रचित माताकार का ही होगा ।

इसमें भी कुछ अपवाद होत हैं। बाद प्रतिभाशाली लेखक-समूह अपने मकसदों को और चाहको को स्वाक्षरी (Autograph) देते समय स्वयं ही सर्वांग मुन्दर बचन तयार करते हैं । रवीन्द्रनाथ ने आपात के कला रसिकों के लिये ऐसे मुन्दर बचन उनके बसारायण पत्रों पर लिख दिये । सिद्धान्त व महाकवि ललीत जिज्ञान ने इसी तरह मुक्त बचन बना-बनाकर प्रसिद्धों को दे दिये । हमारे मरुत व कवि गुभापित्त ठयार करने में बड़े ही पटु थे । दिल्ली दरबार में ही मरुत की घात जमानेवान् जगन्नाथ पण्डित ने भी अगस्त्य गुभापित्त हवा में धाड़ दिये । एम स्वयं गुभापिता की बात अलग है। और बिभी गच्छवामी के अर्थों में स वाक्या को चुनना और मुक्ति के तीर पर समाज के सामने पर देना अलग बात है । उपम्याग क्या कहानी इतिहास नाटक निबन्ध पत्र समाचार और स्वाक्षरी तरह-तरह के माहिर्य में स हम बचन कुछ कहते हैं । कविता में स गुभापिता को अत्र करना कोई बड़ी बात नहीं है । लक्ष्य में स गुभापिता को पण्डित करना यही अर्थ बड़ी बात है । गद्य ही माताकार का अर्थात् निबन्ध है । गद्यकार अगद में सापेक्षता भरता है । हम तो कहते हैं कि मूल अर्थकार एका अर्थम देगदर अगन्त तो क्या अग्रह कर्ता का

वृत्त हो जायगा ।

मैं तो मानता हूँ कि इस तरह वचना को सन्दर्भ में से निकाल कर किसी गुलदस्ते में बिठाते समय उन वचनों में थोड़ा कुछ परिवर्तन करने की इजाजत सग्रहकार को होनी चाहिये । वह है तो केवल सग्रहकार, लेकिन उसका रचना कौशल अगर सफल हुआ तो वह एक नव निर्मिती ही हो सकती है । (थोड़ा विषयान्तर करने में कहूँगा कि ऐसे वचन सग्रह को अगर किसी साहित्य परिपद की ओर से इनाम या पुस्तकार मिला तो भाषे से ज्यादा हिस्सा सग्रह रचनाकार को मिलना चाहिये । मुझे पूरा विश्वास है कि प्रयत्नकार ऐसे घटवारे के लिये तुरन्त और सहज राजी होगा ।)

प्रतुस्त सूक्ति-सचयन में सग्रहकर्ता ने प्रकरण विभाग अच्छे किये हैं । जैनेन्द्रजी की प्रतिभा जिन जिन क्षेत्रों में प्रकट हुई उनको यहाँ स्थान मिला है । इन में भी १-शिक्षा साहित्य, २-काम प्रम और सौन्दर्य ३-भादर्श धर्म इन तीन क्षेत्रों में जैनेन्द्रजी की प्रतिभा खुलारहित स्वयं विहार करती आयी है । इसलिये य (तीन प्रकरण विशेष आनन्द देते हैं । व्यक्तित्व और समाज वाला प्रकरण भी खूब नयी-नयी दृष्टि देकर पाठक को चिन्तन में डुबा देता है ।

यहाँ एक वस्तु ध्यान में रखनी चाहिये ।

सूक्तियाँ कोई दार्शनिक सिद्धांत नहीं होती । सूक्तियाँ लेखक के अनुभव को, अनुमान को चिन्तन और कल्पना को समलृति जनक शब्दों और रूपां में व्यक्त करती हैं । सूक्ति जो विचार

स्थिति होगी पोषों पर से फूल तोड़ने वाले और उनकी पसंदगी और रचना करने वाले मालाकार की ।

इसलिये कहता हूँ कि सचयन की सूची उसकी जवाबदारी और उसका श्रेय मूल ग्रन्थकार का नहीं, बचनकारका नहीं किन्तु सचयन और रचना करने वाले रसिक मालाकार का ही होगा ।

इसमें भी कुछ अपवाद होते हैं चन्द प्रतिभाशाली लेखक-बोधु अपने मक्तों को और चाहका को स्वाक्षरी (Autograph) देते समय स्वयं ही सर्वांग सुन्दर बचन सभार करते हैं । रबीन्द्रनाथ ने जापान के जला रसिकों के लिये ऐसे सुन्दर बचन उनके कलात्मक पत्रों पर लिख लिये । लिबनान के महाकवि खलील जिब्रान ने इसी तरह मुक्त बचन बना-बनाकर प्रेमियों को दे लिये । हमारे मस्कृत व कवि सुभाषित सभार करने में बड़े ही पटु थे । दिल्ली दरबार में ही मस्कृत की धार जमानेवाले जगन्नाथ पण्डित ने भी अनन्य सुभाषित हवा में छोड़ लिये । ऐम स्वयं सुभाषिता की बात चलन है और किसी गद्यस्वामी के ग्रन्था में स वाक्या को चुनना और सूक्ति व तीर पर समाज व सामन पर देना प्रमग बात है । उपन्यास क्या कहानी इतिहास नाटक, निबंध पत्र सभापण और स्वाक्षरी तरह-तरहके साहित्य में स हम बचन हूँ सक्त हैं । कविता में से सुभाषिता को एकत्र करना कोई बड़ी बात नहीं है । गद्य में स सुभाषितों को पसन्द करना यही एक बड़ी कता है । गद्य ही मालाकार का सच्चा निवय है । गचयनकार गागर में सापर सा भरता है । हम तो कहेंगे कि मूल प्रपकार एसा बचन देखकर प्रसन्न हो क्या सप्रह कर्ता का

कृतज्ञ हो जायगा ।

मैं तो मानता हूँ कि इस तरह वचना को सुन्दर में से निवाल कर किसी गुलदस्ते में बिठाते समय उन वचनों में थोड़ा कुछ परिवर्तन करने की इजाजत सग्रहकार को होनी चाहिये । वह है तो बेचल सग्रहकार, लेकिन उसना रचना कौशल अगर सफल हुआ तो वह एक नव निर्मिती ही हो सकती है । (थोड़ा विषयान्तर करके मैं कहूँगा कि ऐसे वचन सग्रह को अगर किसी साहित्य परिषद की ओर से इनाम या पुस्तकार मिला तो भाषे से ज्यादा हिस्सा सग्रह रचनाकार को मिलना चाहिये । मुझे पूरा विश्वास है कि प्रथकार ऐसे घटवारे के लिय तुरन्त और सहज राजी हागा ।)

प्रतुस्त सूक्ति-सचयन में सग्रहकर्ता न प्रकरण विभाग भच्छे किये हैं । जनेन्द्रजी की प्रतिभा जिन जिन क्षेत्रों में प्रवृत्त हुई उनको यहाँ स्थान मिला है । इन में भी १-शिक्षा साहित्य २-नाम प्रम और सौम्य ३-भादय धम इन तीन क्षेत्रों में जनेन्द्रजी की प्रतिभा कु ठारहित स्वयर विहार करती भायी है । इसलिय य तीन प्रकरण विशेष मानद देते हैं । ब्यक्तित्व और समाज वाला प्रकरण भी सूब नयी-नयी दृष्टि देकर पाठक को चिन्तन में डुबो देता है ।

यहाँ एक वस्तु ध्यान में रखनी चाहिये ।

सूक्तिपाँ कोई दार्शनिक सिद्धांत नहीं होती । सूक्तिपाँ लेखक के अनुभव को, अनुमान को चिन्तन और कल्पना को चमत्कृति जनक शब्दों और रूपों में व्यक्त करती है । सूक्ति जो विचार

व्यक्त करती है वह एकाकी रहा तो कोई हर्जा नहीं तर की कसौटी पर टिक न सका तो भी क्षति नहा है। सूक्ति मार्मिक (Telling) होनी चाहिये। चमत्कृति-जनक (Exciting) होनी चाहिये। और विचार प्रेरक (Thought Provoking) तो होनी ही चाहिये। यह हो गयी सूक्ति व अन्दर व मान की बात। सूक्ति का भावना उमके बलेवर म होना है। उसकी भाषा निरम या रिवाजी (Tame) हो ता नगी चलेगा। उसका अपना मखरा तो होना ही चाहिये और सूक्ति उमके सन्भ म उठाकर झलग रली तो भी उमकी वक्ताना कम होनी नहीं चाहिये।

महाराष्ट्र व महाकवि मोरोपन्त न सूक्ति सुभाषित या सद्वाक्य का बरण करते हुए कहा है।

षड्वर्णं जनमनोहर अस्यादार मधुर सत्य बोलावे।

अथा सद्वाक्य-श्रवणं ध्यायाद्यै चित्त गिर हि ढोलावें ॥

सद्वाक्य चाहे शब्दों म बहुत अर्थ व्यक्त करने वाला जन मनोहर मधुर और सत्य हो। जिस सुनत ही आता लोगों का हृदय भी हिल उठे। और तारीफ करने के लिये सिर भी ढोल।

और सूक्ति भाषार प्रकार म एकसाल के सिक्क जसी होनी चाहिये। बवल सोने का टुकड़ा काम नहीं आयगा। मैं तो कहूँगा सूक्ति पहनुआर रत्न की जमी चमकीली हो तभी वह सागा क कण्ठ म घोभा देती है और दीघ बाल तक चलन म रहती है।

पाठक देखेंगे कि इस सूक्ति संधपन म अनजानक बचन रत्न हैं। जिसके लिये जनेन्द्रजी और सप्रह्वार दोना हमारे धन्यवाद व अधिकारी हैं।

## अपनी ओर से

सूक्ति चित्रण के समान है। सूक्तियों में सचेतन अनुभव, गहन चिन्तन और उन्मुक्त कल्पनाएँ अमस्कृति जनक क्षणों में उतरी रहती हैं। यही कारण है सूक्तियाँ सगी-साथी के रूप में कटकाकीर्ण जीवन-पथ पर यात्री का न केवल साथ देती हैं अपितु प्रवाश और बल भी देती हैं।

पढ़ने की रुचि है पढ़ते हुए अजन करत जाने की प्रवृत्ति भी। इस तरह स्वतः कुछ अनौपचारिक सफलता-से बने। कुछ साथियाँ के प्रतिरिक्त उनसे स्वयं मुझका भी समय-समय पर प्रकाश व प्रेरणा मिलती रही है। प्रस्तुत सूक्ति सचयन भी मात्र स्वानन्द और स्वरुचि प्रगूत ही है।

आदरणीय माबूजी का वाङ्मय पढ़ते हुए दादा धर्माधिकारी के इस कथन की 'उनकी (जनेन्द्रजी की) वागु वैजयन्ती के सारे मोक्षिक कौस्तुभ ही है सायद ही कोई प्रतिरिक्त या व्यथ क्षण होता है। तीव्र प्रतीति होती रही। असह्य कौस्तुभ

मुक्ताम्रा में से मणिमाला गूथना सरल नहीं लगा । इन प्रस्तुत सवलित मुक्ताम्रा के प्रति प्रचुर भावपण रहते हुए भी अनगिनत शेष रहों के प्रति चाह तीव्रतर ही बनी हुई है । भाषा है इन सूक्तियों से उदबुद्ध पाठकों की रचि जैनेन्द्र-साहित्य के विस्तीर्ण सागर तल से और भी मनोज मोती चुनने को बड़ेगी ।

माननीय काका साहब का बहुत-बहुत आभारी हूँ जिन्होंने स्वल्पतर समय में अत्यन्त सचेतन वृत्ति से भूमिका भिजवाने का अनुग्रह किया ।

—हर्यंशु

२१ १५

## क्रम



भूमिका	५
अपनी ओर से	११
युद्ध अहिंसा	१७
राज्य नीति	२६
शिक्षा साहित्य	४५
काम प्रेम सौन्दर्य	६१
अर्थ कम	८३
व्यक्तित्व समाज	९६
आदर्श धर्म	१२१
विविध	१३६
संकेतिका	१५३



मुक्तामो म से मणिमाला गूथना सरस नहीं लगा । इन प्रस्तुत सबलित मुक्तामों के प्रति प्रचुर आकर्षण रहते हुए भी भनगिनत रोप रहो के प्रति चाह हीप्रतर ही धनी हुई है । आशा है इन सूक्तियों से उदबुद्ध पाठकों की रुचि जैन-द्र-साहित्य के विस्तीर्ण सागर तस से और भी मनोज मोती चुनने को बढेगी ।

माननीय नाका साहब का बहुत-बहुत आभारी हू जिन्होंने स्वल्पतर समय म अत्यन्त सचेतन वृत्ति से भूमिका निजवाने का धनुप्रह किया ।

—हर्यचन्द्र

२१ ६५

## क्रम



भूमिका	५
भपनी ओर से	११
युद्ध अहिंसा	१७
राज्य नीति	२६
शिक्षा साहित्य	४५
काम प्रेम सौन्दर्य	६१
अर्थ काम	८३
व्यक्तित्व समाज	९९
आदर्श धर्म	१२१
विविध	१३६
संकेतिका	१५३



युद्ध : अहिंसा



अहिंसा का मतलब इतना ही नहीं है कि हम किसी का बुरा नहीं चाहेंगे और नहीं करेंगे। नहीं बल्कि हर किसी का भला सोचेंगे और वह भला करने के लिये आगे बढ़ेंगे।

-२-

हिंसा नहीं करता इसका मतलब है कि प्रेम करता है। कम-हीनता भूठी अहिंसा का लक्षण है। जब कम नहीं होगा तब हिंसा ही कहाँ से हागी? ऐसी धारणा अहिंसा नहीं निर्जीवता पदा करती है। जैसे अपने को मार लेना मृत हो जाना नहीं है, वैसे ही कम से बचना हिंसा से बचना नहीं है।

-३-

भल और एकता में विश्वास रखने वाले अपनी जान को किसी भी समझ ल जैसे कि हिंसा में विश्वास रखने वाले दूसरे की जान को समझते हैं। वे अपनी जान देने को तयार हो जायें जैसे कि हिंसा वाला की सन्नद्ध पीजें जान लेन को तयार रहती हैं।

अ निश्चय हा यहा सूचक है मात्र है । हिंसा का अभाव अहिंसा नहीं है और न वस्तु का अभाव अपरिग्रह है । ऐसा हो तो घम अभावात्मक हो आय । अ अभाव का नहीं भाषा की असमर्थता का द्योतक है ।

हिंसक युद्ध की प्रेरणा एक गहरे हीनाभाव म स आती है । दूसरे पक्ष म उसकी जड़ म आतंक या भय हाता है । इसीस फल म नेखी और उददडता दसन म आती है ।

युद्धकाल म सबसे आवश्यक तत्व है भय । भय के लिए धरती ईर्ष्या और घृणा की चाहिये । इस सबके संयोग बिना शत्रु स लड़ाई न हागी ।

निश्चय हा मामन वाल का भार गिरान की स्पर्धा जतलाती है कि आदमी न नगा किया है । नगा टिकन वाली चीज नहीं है । उस एक दिन गिरना है ।

घोर स घोर हिंसक कम में भी कोई अहिंसा की भावना न हो ता वह हा तक नही सकता । खू खार जानवर अपने गिकार को मारता है, लेकिन वही अपने बच्चे को प्यार करता है । मैं कहता हू कि वह मारता है तो उम प्यार को साथक करन के लिए ही शिकार को मारता है ।

-६-

लेकिन उन युद्धा क वावजूद भी प्रत्युत उनके द्वारा ही वह पहचानता चला गया कि अपने और पराये के बीच की रेखा उसकी अपनी ही खोची हुई है सत्य म वह कही नही है । आज जिसको दुश्मन समभा है उससे किसी प्रकार का समझौता यहाँ तक कि मेल हुय बिना स्वय को ही चन नही मिमन वाला है । युद्धा की भावना म मल की आवश्यकता प्रकट होती गई है और थापसी भगडा के बीच म स मानव-जाति अधिक स अधिक सम्मिलित हाती चली आया है ।

-१०-

हम सखी अपनी अपनी शान्तिया की चिन्ता ही युद्ध को सामग्री और अवसर बनती है ।

युद्ध अहिंसा १६



शान्ति का विवाह जानती हो किससे होता है ? युद्ध से होता है । शान्ति विचारो युद्ध की ही पत्नि है । सामान्य नहीं धर्म-पत्नि । पत्नित्व पुराना हो जाता है तो स्वयंवर क समांराह का फिर ठाठ होता है ।

व्यक्तिगत हिंसा म वासना की तीव्रता होती है । स्टेट को हिंसा म वसी तीव्रता नहीं होती फिर स्टेट की हिंसा खुली हुई है । उसक साथ छिपाव का वातावरण कम होता है, फिर जहाँ स्टेट गद है उसक साथ कम बहुत हिंसा गर्भित है ही । कहा जा सकता है कि वह बहुत नैमित्तिक है सक्ली उतनी नहीं ।

मैं तो मानता हू कि व्यक्तिगत हिंसा अब बहुत ही कम हा गई है यानि वह लोगो की तबियत स अधिकाधिक हटती जा रही है । हा, सरकारी हिंसा का अभी भी फगन है । राष्ट्र सडत हुए शान्ति नहीं बल्कि गव मानते है । सविन यह भी क्या अपने आप म उन्नति नहीं है कि व्यक्तिगत मामला म हिंसा एकदम निवृष्ट समझे जाती है ।

लड़ाई लड़ने वाला मे यही दा पक्ष हैं । एक स्वाथ रक्षा म लडते हैं और दूसरे स्वार्थ विस्तार म लडते है । इन वृत्तिया को जगत मे तरह-तरह के नाम प्राप्त हैं—न्याय, अक्षय, धम इत्यादि ।

-१५-

यह सबया असत्य है कि हिंसा स हिंसा शान्त हो सकती है ।

-१६-

दुनिया में सब हिंसा वधाव की हिंसा है । आक्रमण की हिंसा मे गहरे जाकर देखें तो पता चलेगा कि वहा भी अपनापन ही मुख्य है । दूसरे को सताना मुख्य नहीं है । स्वत्याभाव की रक्षा या प्रतिष्ठा की कल्पना मे से ही परहत्या की यानि आक्रमण की तयारी आती है ।

-१७-

सम्पूणता को परमात्मा कहो । उसका अज्ञेय भाग सत्य है । प्राप्त सत्य अहिंसा है । मानव चू कि अपूण है इससे उसका समाजिक धम अहिंसा ही है ।

जैसे रात को चाँद का बस उजला भाग दीखता है शेष पिछला भाग उसका नहीं दिखाई देता उसी तरह वहना चाहिए कि जो भाग सत्य का हमारे सम्मुख है वह अहिंसा है। वह भाग अगर उजला है तो किसी अपर ज्योति से ही है। लेकिन फिर भी वह प्रकाशोदगम (सत्य) स्वयम् हमारे लिए कुछ अज्ञात और प्राथनीय ही है। और जो उसका पहलू भावचरणीय रूप में सम्मुख है वही अहिंसा है।

शान्ति नकारात्मक ही है। हम नकार का गलत समझते हैं। पर जब हम नकार होते हैं तब जो ह वह मिट नहीं जाता बल्कि वह खुना अवसर पाता है।

जो अहिंसा की ध्वजा उद्घोष के साथ फहराता है वह अहिंसा की ध्वान चलाता है वह अहिंसक नहीं है।

ध्यावहारिक मन्चाई एष है वह अद्वैत है निरपवाद है। वही अहिंसा है।

क्रोध शान्ति की शक्ति के सामने अपदाय है और अहिंसा की सार्विक शक्ति के आगे सदा ही पराजित है ।

-२३-

अपने असयम से दूसरे का दमन आता ह ।

-२४-

युद्ध सत्य के लिए ही किया जाता है । लडने वाले दाना अपनी अपनी तरफ हक्क न देवें तो वे लडे किस बल पर ? लडाई इस अधिकार के निवा क्या है कि हम दूसरे सकटा-हजारा को मौत के घाट उतार कर सत्य और याय का रास्ता साफ करत हैं । युद्ध की प्रभुसत्ता के अधिकार इसलिए प्रत्येक देश अपने हाथ म रखता है । जिमे सरकार कहते हैं वह उसी अधिकार को अमल मे नाने के यत्र के सिवा क्या है ?

-२५-

माहिमा से माक्ष के बजाय अहिंसा म मोक्ष है ।

-१८-

जैसे रात को चाँद का बस उजला भाग दीखता है शेष पिछला भाग उसका नहीं दिखलाई देता उसी तरह वहना चाहिए कि जो भाग सत्य का हमारे सम्मुख है वह अहिंसा है। वह भाग अगर उजला है तो किसी अपर ज्याति से ही है। लेकिन फिर भी वह प्रकाशोदगम (सत्य) स्वयम् हमारे लिए कुछ अज्ञात और प्रायनीय ही है। और जो उसका पहलू आचरणीय रूप में सम्मुख है वही अहिंसा है।

-१९-

गान्धि नारायण ही है। हम नकार का गलत समझते हैं। पर जब हम नकार होते हैं तब जो ह वह मिट नहीं जाता बल्कि वह खुला अवसर पाता है।

-२०-

जो अहिंसा की ध्वजा उन्धाप के साथ फहराता है वह अहिंसा की दुकान चलाता है वह अहिंसक नहीं है।

-२१-

ध्यावहारिक मञ्चाई एन है वह झट्ट है निरपवाद है। वही अहिंसा है।

२२/गूति मन्थन

क्रोध शान्ति की शक्ति के सामने अपदाय है और अहिंसा की सात्विक शक्ति के आगे मदा ही पराजित है।

-२३-

अपने असयम से दूसरे का दमन माना है।

-२४-

युद्ध सत्य के लिए ही किया जाता है। नैनवान दोनो अपनी अपनी तरफ हक न देवें ता वे यत् किन् वल पर ? लडाई इस अधिकार क सिवा क्या है कि इन दूसरे सकडा-हजारों का मौत क घाट न्गार कर म्म क्कार याय का रास्ता साफ करत हैं। युद्ध की प्रमुम्मा क अधिकार इसलिये प्रत्येक देग अपन हाय न ग्दना है, जिसे सरकार कहते हैं वह न्मा अन्निहार का इन्ने सान के यन्त्र के सिवा क्या है ?

-२५-

अहिंसा से माय के बजाय अहिंसा नै न्द है।

-२६-

शान्ति वह जो टूटे नहीं जो दूसरे पर निर्भर होकर न रहे,  
न किसी बाहरी घटना पर न व्यक्ति पर जो खुद में पूरी  
हो और सबथा यथाथ हो ।

-२७-

हिंसा की जीत सगठन में देखी जाती है । अहिंसा की हार  
इसी में होती रही है कि वह व्यक्तिगत दायरे में अपना  
संतोष और मोक्ष खोजती है ।

-२८-

जैसे साधु की पहचान उसकी साधुता ही सबती है न कि  
वेप । वैसे ही अहिंसा की पहचान आचरण से होगी न कि  
कहने से ।

-२९-

मेरे विचार में शान्ति अपनी मर्यादाओं की स्वीकृति है ।  
प्रायना में हम अपनी मीमांसा की कृत्तनताभाव से स्वीकार  
करते हैं । प्रायना में हम अपने को अज्ञ मानते हैं इसी  
कारण प्रायना से बल मिलता है ।

२४ शक्ति मन्त्र

स्वेच्छा पूर्वक परहित में दुख उठाने का रास्ता ही सुख देता है ।

-३१-

गाय की हत्या पर जुगुप्सा हो सकती है पर चमड़े के व्यापार में करोड़ों की कमाई ठीक लग आती है । हत्या से जो घबराता है लेकिन युद्ध वाली हिंसा या उत्पादन और पूँजी के अभिमत केंद्रीकरण से होने वाली व्यापक और सूक्ष्म हिंसा हमको प्रिय लग सकती है । यह सब बृहत्ता की माया है । स्थूल आँख गुण तक नहीं पहुँचती, परिणाम पर भटकती है ।

-३२-

भय की भावनाओं पर धर्मों का प्रारम्भ हुआ यह बात झूठ नहीं है ।

-३३-

दर से जो हाता है वह सयम नहीं है । सस्कृति सयम का फल है । दमन हिंसा को निमंत्रण है ।



-३४-

जो चीटिया को चीनी खिलाता है और पढोसी की खब नही रखता वह अहिंसक नही है।

-३५-

पशु की पशुता म पाप नहीं ह पाप मनुष्य की पशुत में ह।

-३६-

मित्र को मित्रता देने म क्या बडाई या क्या पराक्रम ? शत्रु को मित्रता मे जीतना ह। शत्रु का सच्चा नाश इसी म ह क्याकि शत्रुता के बीज मिटते है और शत्रु सदा क लिए मित्र बन जात है।

-३७-

मरन क डर स ही मारने का माह बनता ह।

-३८-

विरात्र रोष म मे उपजना ह। रुद्ध ह उसे सबकाग और

२९/भूमि मषयन

उपयोग मिले तो वही ऋण धन हो जाए।

-३९-

आजकल जवदस्त का सब कुछ है। अदालत भी उसकी है, दोस्त भी उसके हैं पत्नी भी उसका है। ये सब आपस में एक दूसरे के बनकर रहते हैं।

-४०-

अमल में डर ही हो सकता है जो आपके लिए किसी को दुश्मन बनाए। उस डर में से ही यह शक्ति आती है कि आप उसको दुश्मन मानकर मारें। कही यदि आप निडर हुए तो खटका है कि शत्रु शत्रु ही न रह जाए आदमी दीख आए। तब उसको मारने लायक जोश ही कहाँ रह जाएगा और यही नामर्दा समझी जाएगी।

-४१-

दुग्ध क्लेश का सम्बन्ध मानसिकता में विशेष है।

-४२-

परमात्मा हृदय लापकर प्राण ही जाती है।

-४३-

दुःख सहना वीरा का काम है। अपने दुःख में सज्जन पुरुष किसी को कष्ट नहीं देते और उस गान्ति से सहते हैं।

-४४-

जहाँ परस्पर संयाग किसी सांस्कृतिक भावना को सामने रखकर नहीं होता, वहाँ जल्दी या देर में वह बर का कारण हो जाता है।

-४५-

भय सहार का हेतु है। निभय रहने से सहार की भाव शक्ति निरक्षय होगी।

-४६-

सूक्ष्मे सूक्ष्म यह विकास की ताविक गति है। हिंसा से अहिंसा यह विकास की सामाजिक अथवा मानवीय गति है।



राज्य : नीति



राज्य शक्ति नहीं शक्ति के उदय में बाधा है ।

शासन कभी अग्नी और से अग्नि को समाप्त करने वाला नहीं है । समाज को ही नीचे में अग्नि को शासन मुक्त करते हुए उठना होगा ।

स्वतंत्रता का सही उपयोग स्वतंत्रता देने में अधिक है लेन में नहीं ।

आदमी पद में उतना भला नहीं कर सकता । आत्म से हटकर ही पद पर बैठा जाता है । वहाँ आत्म साक्षात्कार का अवसर नहीं न पूरे आत्मविसर्जन का । समझौता करना पड़ता है और उस कृतव्य को जो आत्मिक नहीं है ओढ़कर चलना पड़ता है ।

-५१-

राज्य अच्छा वह जो राज्य कम से कम कर ।

-५२-

शासक श्रमिक नहीं रहता । श्रम करन और श्रमिक का ही धन रखने वाला औसत आदमी और उस श्रम की व्यवस्था और उसके फल का व्यापार करन वाला व्यवसायी या व्यवस्थापक इन दोनों के हिता में अंतर होता है ।

-५३-

जिसन जीवन का सत्य की शोध के लिए ही समझा है वह गवर्नर होना कस स्वीकार कर सकता है ।

-५४-

डिप्टेटरशिप के माने ही है एक कद्रम सिमटी हुई भौतिक ताकत ।

-५५-

सुनही ही दूर रह सकते हैं । विरोधी और विद्रोही को सदा

३२/सूचित सचयन

पास जान का अवसर है, यह शासन को ग्रहिसक नाति है ।

-५६-

दूमरे की पराजय मे एक की सफलता और उसको पराधीन रखने मे अपनी स्वाधीनता है ?

-५ -

वर को मिटाने क लिए वरी को मान देने से गुरु करना होगा । मान ऊपरी नही बल्कि हार्दिक । ऊपर से तो बल्कि असहयोग और मत्याग्रह भी चल सकता है ।

-५८-

मौन की सजा समाज के हक मे उसकी हार का प्रमाण है वह दीवालियापन है ।

-५९-

वाह्य शासन तभी तक शासन रूप मे टिक सकता है, जब तक अंत शासन मे कुछ अटि है । जब भीतर से जीवन स्वावलम्बी हा जायेगा तब वाह्यावलम्बन अनावश्यक होकर स्वयम् विवर रहेगा । अण्डे का खान तभी तक है जब तक भीतर जोधन पक नही पाया है शासक समर्थ



वना कि खोल टूट ही जायगा । क्या हम यह कहें कि यह खोल बच्चे बनने में बाधक है ?

-६०-

स्वाधीन चेता व्यक्ति स्वच्छा पूर्वक सेवा करता है और विवक पूर्वक काम करता है ।

-६१-

मयादात्रा की निश्चिति के चार में यही तत्व निर्णायक हो सकता है कि एक व्यक्ति की सीमा दूसरा व्यक्ति है । एक समाज का सीमा दूसरा समाज है । वे सीमा अधिकारा का है प्रम व्यवहार की ये मामाए नहीं हैं ।

-६२-

चुनाव में खड़े होने की तरफ मात्र उमकी अधिक लगा हाती है जा महत्वाकांक्षी है और महत्वाकाक्षा अनतिक है । इसमें आजवन की चुनाव प्रथा नतिवता को बढ़ाती हुई नहीं देखन में आती ।

-१-

गामन का मात्र है भद डाला और राज करो । जन समाज

४/मूक्ति सचयन

म श्र एिया डालकर शासन चलाया जाता है । ऊच और नीच अमीर और गरीब इस तरह के भेद सत्ता के लिये बहुत जरूरी है । क्योकि उस भेद के कारण सत्ता अनिवाय बनती है । दो लडे ता बीच बचाव का काम हाथ मे लेने तीसरा भा ही जाता है ।

-६४-

स्वाधीनता का मतलब अपने अधीन होना-किसी और देश का उसपर आतक न हो । साथ यह भी उसका मतलब होना चाहिये कि किसी अय दश पर उसे लोभ की अथवा आक्रमण की लालसा न हो । क्योकि अगर वसी लालसा है ता उतने अश मे उसको स्वस्थ नही कहना होगा । वह पराधीन है-पर की तृष्णा के अधीन ।

-६५-

पू जी शासन करती है, श्रम शोषित होता है । ऐसे विपमता पदा होती है और तरह-तरह की व्याधिया ज म लेती है । समाज म श्रेणिया उपजती हैं, उनमे तनाव होता है और समाज शरीर क फटन की हालत बनो रहती है ।

-६६-

जहां तब आम जनता का मानसिक विवास पहुँचा है ठीक

उसी तल का बल जिन लोगो में अधिक है, वे उस काल के शासक बन जाते हैं। आज कोई मारन काटने की ताकत के बल पर बड़ा हो सकता है, यह विश्वसनीय नहीं जान पड़ता। लेकिन पहले ऐसा हो सकता था।

—६७—

यह सदा के लिए असम्भव है कि सच्चा पुरुष किसी राष्ट्र का शासन प्राप्त अधिनायक हो। राजा बड़ा नहीं होता। बड़ा वह जिसका बढप्पन खड़ता ही है गिरता कभी नहीं। मौत के बाद भी वह बड़ता है। इतिहास उसे घमका ही सकता है धु धला नहीं कर सकता।

—६८—

शासन व व्यवस्था अपने आप में काम बनता हो तब है जब समाज के अवयवों में सघन व विषमता हो।

—६९—

जानवर वाली आजादी जितने ही अंग में आदमी अपने पास में जानबूझ कर खाता जायगा उतने ही अंग में शायद अमली सच्ची और इन्मानी आजादी उसके पास आती जायगी।

३६/सूक्ति गद्यन

नतिकता का अधिष्ठान हृदय है। समाज का हृदय क्या है? कहना चाहिये कि शिक्षक-वर्ग, लेखक-वर्ग, ब्राह्मण-वर्ग उस समाज का हृदय है। शासक-वर्ग समाज के धातु है। धातुवल हृदय बल के बश से बाहर हो तो उस समाज को ज्वरग्रस्त कहना चाहिए।

राजनीति नीति प्रधान जब बनेगी तब जान पडेगा कि केन्द्र गुट से और पद से हटकर व्यक्ति म और उसके श्रम म चला आया है। तब धनी वही होगा जो श्रमी हैं। और सत्ता का स्वत्व उसके पास होगा जो निस्व है। गाधीजी से उस प्रकार की राजनीति के चलने की सम्भावना हो आयी थी।

दासक म यह तो साफ ही है कि शामिल की अपेक्षा बल की अधिकता होगी। श्रम ज्ञान और बल ये दो चीजें हैं। ज्ञान सक्रिय होने पर प्रबल होता है, निष्क्रिय ज्ञान निबल है। इसलिये यह हो सकता है कि पण्डित की जगह नतिक

उसी तल का बल जिन लोगो म अधिक है, वे उस काल के शासक बन जाते हैं। आज कोई मारने काटने की ताकत के बल पर बढा हो सकता है, यह विश्वसनीय नहीं जान पडता। लेकिन पहले ऐसा हो सकता था।

१२

-६७-

यह मदा के लिए असम्भव है कि सच्चा पुरुष किसी राष्ट्र का शासन प्राप्त अधिनायक हा। राजा बढा नहीं होता। बढा वह जिसका बढप्पन चढता ही है गिरता कभी नहीं। मौत के बाद भी वह बढता है। इतिहास उसे धमका ही सकता है धुँधला नहीं कर सकता।

-६८-

शासन व व्यवस्था अपने आप म काम बनता हो तब है जब समाज के अययवो म सघप व विपमता हो।

-६९-

जानवर वाली आजादा जितने ही अंग म आदमी अपने पास म जानबूझ कर खोता जायगा उतन ही अंग म शायद अमनी मच्चो और इमानो आजादी उमक पाव आना जायगा।

६। गुपित मन्थन

नतिकता का अधिष्ठान हृदय है। समाज का हृदय क्या है? कहना चाहिये कि शिक्षक-वर्ग, लेखक-वर्ग आह्वान-वर्ग उस समाज का हृदय है। सामक-वर्ग समाज के बाहु है। बाहुवन हृदय बल के बश से बाहर हो तो उस समाज को ज्वरग्रस्त कहना चाहिए।

राजनीति नीति प्रधान जब बनेगी तब जान पड़ेगा कि वेन्द्र गुट से और पद से हटकर व्यक्ति में और उसके धर्म में चला आया है। तब धनी वही होगा जो धमी है। और सत्ता का स्वत्व उसके पास होगा जो निस्व है। गांधीजी से उस प्रकार की राजनीति के चलने का सम्भावना हो पायी थी।

शासक में यह तो साफ ही है कि शासित की अपेक्षा बल की अधिबलता हाथी। अब ज्ञान और बल ये दो चीजें हैं। ज्ञान सक्रिय हान पर प्रबल होता है, निष्क्रिय पान निबल है। इसलिये यह हो सकता है कि पशुबल की जगह नतिक

बल क हाथ म सामन हो जाय । पर यह ध्यान रखने की बात है कि नतिक ज्ञान काफी नहीं है । -

-७३-

राजनीति नीति का राज नहीं चाहती । वह तो राज ही चाहती है । राज करने और राज रखने की ही नीति को वह चाहती है पर क्या वह नीति है जो श्राव राज पर रखे और जिन पर वह राज हो उन पर पाव रखने की सोचे ।

-७४-

विश्व की राजनीति के आगे प्रश्न है कि वह राज को प्रधान रखेगी कि नीति को । राज प्रमुख राजनीति तो चल ही रही है और उसका परिणाम भी उजागर है । क्या नीतिप्रधान भी वह कभी बनना आवश्यक और सम्भव समझेगी ?

-७५-

राज्य का बल हृदय का नहीं कानून का है । गुण का नहीं सम्या का है सहानुभूति का नहीं दमन का है उस नियम को दमने हुए राज पुरुष की ससृति को नतुत्व देने की

असमयता अवश्य ही मान लेनी चाहिये ।

-७६-

तत्र केवल मात्र प्रयोग के फल हैं । उनमें सत्यता नहीं है ।  
सच को घेरने का दावा करके अपने झूठ की ही वे घोषणा  
करते हैं ।

-७७-

राजनीति के लिए मानव नीति को छोड़ना कभी-कभी  
क्षम्य होने वाला नहीं है ।

-७८-

शासन अनागत के आह्वान में सदा ही बाधा है । वह  
स्थिति से बच जाता है और गति यथा विहित उससे  
रुक्ती ही है ।

-७९-

आप अगर समझने हो कि मन्चाई और भलाई के बल  
पर कोई नेता बनता है तो मुझे क्षमा माँजिये । आपको  
यही समझना और बाकी है ।



जब धर्म कम अधिकार अधिक हो जाता है । तब राज्य रक्षा का नहीं धर्म का कारण बनता है ।

-८१-

राज्य ने श्रद्धा को तोड़ा है और उसके अभाव से लोग म अनाथ भाव आया कि उन्हें अपने अधीन ले लिया है ।

-८२-

घर शासन गून्ध हो तो एक रोज होते-होते विश्व शासन धूय हो जायगा और यही मोक्ष ह । शासन की जगह बहा होती ह जहा प्रेम को जगह नहीं । और जब किसी म इतना प्रेम नहा जा घर म फला रह सब तो वह आदमी बसा ।

-८३-

शक्ति राज्य का नाम है मागलला अर्थात् कानून शक्ति की मुट्ठी म । तब पाप को आने म बठा दिया जाता है । राज धर्म, नाति धर्म, आदि आदि को भगवद् भजन करन दिया जाता है ।

५ /शक्ति मचया

राजघमका पहला नियम है कि शासन से याय अलग होकर ऊपर होकर रह। इसकी निरकुश हाने की और वृत्ति होती है। अधिकार मद है। अधिकार की आदत अधिक अधिकार मागती है। याय उस पर अकुश रखे। शासन याय के प्रति उत्तरदायी रहे और शासन याय की मांग और याय के हुक्म को पूरा करे और उसके नियम मर्यादा म रहे।

राजनीति अपनी सत्ता और अपने कम के बारे में अपने भातर गहर में पड़ी इस स्मशान की भूमिका पर से अगर सोचे? सोचे कि यहा का करा घरा चीपट यही सब रह जायगा, मान सम्मान सब बट जायगा, लाग आयेंगे और उसमें भाग दिखा जायगे। यहा से साचे तो क्या देश के उसके, हम सबके लिये यह परम गुभ न हा।

धानून के डण्ठे में अपराध का कौशल नये-नये आविष्कार की सूझ ही पाता है, मद और परास्त तनिक नहीं हो पाता।

वास्तव में 'याय का काम जिलाने का है। 'याय देया के समीप है ऋग्ता के उतना नहीं।

शासन यदि वह है जो बाहर से और ऊपर से आता है तो अनुगामन वह है जो अंदर से और स्वेच्छा से आता है।

मुझे स्पष्ट हो गया कि अगर कभी दुनियाँ एक होगी तो वह संयुक्त राष्ट्र के भवन या जतन में सँ उतनी नहीं हागी जितनी मानव व्यक्तियों के परस्पर खुल चित्त के व्यवहार में होगी। व्यक्ति आये-जायेंगे वैसे ही जैसे कि हवा। बीच में सँग्य होगा नहीं और मन को खोजता हुआ मन घनायाम ढुलकर उसमें आ मिलेगा।

क्या लकीर ही नहा है जिससे स्वयंसे और विना बनते हैं और जिन पर युद्ध होते हैं। लकीर भी केवल नशे पर प्रमत्त में वही नहा।

एक काला बाजार है, दूसरा सफेद बाजार। सफेद और काले के बीच की लकीर को देखने चलते हैं तो वह कागजी से गहरी नहीं रहती। सरकार के बीच में आ जाने से सफेद और काले में भेद पड़ता है। वह जब तक न आये सब सफेद ही है।

-६२-

सरकार से हमें सहकार पर आना है।

-६३-

सभ्या म मच्चाई नहीं ह।

-६४-

टिषने वाला अत म तो वही बल रहेगा जो 'म' का न हो, या कहो 'अनेक म का हो।

-६५-

अपराध वृत्ति से छुटकारा पाने के लिए यह अधिक सगत

है कि हम उस अपराध को अपराधी के स्थान से देखें न कि जज के स्थान से । तब अपराधी को दण्ड देने के बजाय उस अपराध के मूल को निभल करने की प्ररणा अधिक हागी ।

-६६-

साग समाज कहते हैं दग कहते हैं । समाज और दग का आरम्भ पद्योमी से है ।

-६७-

भण्डे को मत्य बनाने वाला कपडा नहीं है, शहीदा का रून है ।

-६८-

यह नख्या और सम्प्रदाय का बल क्या व्यक्तित्व के पक्ष में अचलता रहा है ? महिमा का जुटाया हुआ मण्डन आदर के अभाव अन्तः की महिमा हीनता का ही तो सूचक नहीं है ? इसमें गायद असाधारण वह है जो ऊपर से सबका साधारण है ।



**शिक्षा : साहित्य**



-६६-

शिक्षा का मतलब है व्यक्ति का समाजोपयोगी विकास ।

-१००-

हमार अधिक् जानने का मतलब यही होता है कि अज्ञेय का परिमाण हमारे निकट बढ जाता है ।

-१०१-

जानना यहा क्या है ? करना जो इतना सामने पडा है । करने स अलग होकर जो जानना है वह न भी जाना गया तो क्या विशेष हानि होन वाली है ।

-१०२-

घर ही उत्तम शिक्षालय है । सफल पुरप पाठशाला म नही जीवन शाला म अध्ययन करते हैं ।

-१०३-

जा जानता है कि वह जानता है, वही नही जानता है ।

शिक्षा साहित्य/४७



माखस क समक्ष अनता री म्वीकृति हो विनता है ।

-१०५-

दाद की शक्ति हमारी सारी उन्नति का आधार है । भारी भूखता होंगी कि गदियों की साधना से जो शब्द ऊँचे चढ़े हैं उन्हें हम व्यक्तियाँ के दाप का उल्लेख कर नीचे खींच लायें ।

-१०६-

भस का याज है वहस । जरूर उसकी यही व्युत्पत्ति है । भाषा शास्त्र और शब्द विज्ञान की दृष्टि से इसमें किसी प्रकार की ग़ाबली का स्थान नहीं हो सकता । जब तक मैं वहस नहीं करता मैं भस भी नहीं हो सकता । भस नहीं हूँ इसी व अर्थ है कि मैं अकलमन्द हूँ । वहस कर पढ़ता हूँ तो स्पष्ट है कि भस की भाँति मरी अकल चरन चली गई है ।

-१०७-

प्रतिभा भी चाही बहुत असामाजिक वस्तु है । इसलिए दायद हर-एक प्रतिभावान मनुष्य को समाज की अवज्ञा प्राप्त होती है ।

हम म पूणता होती तो परमात्मा से अभिन्न हम महाशून्य ही न हाते ? अपूण है, इसीस हम हैं । सच्चा ज्ञान सदा इसी अपूणता के बोध को हममे गहरा करता है ।

-१०९-

अबल बढो कि भेंस ?

माहित्य बडा कि राजनीति ?

मैंने कहा कि सच सुनना चाहते हैं तो सुनिये अपनी अबल से तो मरते दम तक भस बया हायी को और किसी को भी बडा नहीं कह सकता । इसलिये नही कि वह अबल है बल्कि इसलिये कि वह मेरी है । और मेरी छोड आपकी अबल की बान कीजिये तो उससे तो चीटी भी बढी है माहब, चीटी । उसकी साफ बजह यह है कि वह आपकी है ।

-११०-

शिक्षा आज इसने हिन्दुस्तान को क्या बना दिया है ? हृदय की सारी विभूति का चूस लेती है, आदमी को दम्भ करना सिखाती है, अपने घाद जाल मे सच्चाई को ढक लती है और अपने बड़े-बड़े कामों को दिखा कर आदमी को उलभा देती है ।

-१११-

कम्युनिज्म वह गांधीवाद है जिसमें से हत्या करके ईश्वर को अलग कर दिया गया है ।

-११२-

वाद का लक्षण है कि वह प्रतिवाद को विवाद द्वारा खण्डित करें और इस तरह अपने को प्रचलित करें ।

-११३-

मानवता गिर रही है क्या इसलिये नहीं कि वादमता बढ़ रही है ।

-११४-

वाद का काम है प्रतिवाद को विवाद द्वारा खण्डित करना । और इस तरह अपने को चलाना ।

-११५-

उपयाम लेखक में तप चाहिये । तप-यानि कायम और टण्डा जोग ।

५०/मूर्ति गचयन

सरकार आज जनतात्रिक है। हिन्द की जनता और हमलिये सरकार भा आज हिन्दी ही रह सकती है। अंग्रेजी रहकर आगे वह चल नहीं सकती। अंग्रेजी पनप नहीं सकती। अंग्रेज विदेश के थे, विदेशी और देश के अतिथि के रूप में अब जो चाह तो रहे, देश के शासक के रूप में व या शासक भाषा के रूप में अंग्रेजी नहीं रह सकते।

कोई साहित्यकार जन्म जो ईच्छा और माघनापूर्वक अकिंचन वने। रोटी भूख की ही ले अथवा स्नह की ही ल और दुनिया पर अपना कोई दावा या अधिकार न जताये। वमाने के नाम एक पाई कमा खने के अयोग्य अपने को बनाले।

हमारा ज्ञान आपेक्षिक है। वह अपूर्ण है। जगत की विचित्रता उमम कहा समा पाती है? अपने को मानव जब पूरा जान सकता है जानने को शेष तो रह ही जायगा। इसलिये वह सदा घटित होता रहता है जो

हमारे ज्ञान को चौका देता ह ।

-११६-

यदि विद्वान के भीतर सहानुभूति से भरा सा आता हुआ हृदय नहीं है तो वह विद्वत्ता साहित्य की दृष्टि से कुछ बेजान सी चीज है ।

-११७-

वह भाषा दरिद्र है जो जीवन का माथ देन के वजाय उस पर सवारी बसती है ।

-११८-

रोटी के बिना हम कई दिन रह लेंगे । हवा के बिना तो क्षण म ही हमारा काम तमाम हो जायगा । साहित्य उम हवा से सूक्ष्म उससे भी अधिक अनिवाय ह ।

-११९-

जीवन की सत्यो-मुग्ध स्फूर्ति जब भाषा द्वारा मूत और दूसरे को प्राप्त होन योग्य बनती ह तब वही साहित्य होना ह ।

१२/मूक्ति मन्थन

-१२३-

मार्क्सज्म स्थिति का व्यक्ति से नहीं जोड़ता । उसकी दृष्टि से दोष अपने में देखने की जरूरत कम हो जाती है और दायारोपण सामाजिक परिस्थिति में किया जाने लगता है ।

-१२४-

मार्क्सज्म नि सन्देह उस समय प्रचलित कई विचार-धाराओं को अपने में समा लेता है । वह उनका समन्वय होने के कारण प्रबल हो सका लेकिन अंत में जाकर उसका आधार बग बिभेद है अभेद नहीं । इसलिये यथा शीघ्र उसकी अपर्याप्तता उभर कर प्रमाणित हो जानी है ।

-१२५-

लेखक के लिखन का उद्देश्य अपने को सब में बांट देना है

-१२६-

साहित्यकार के मन की ओर से उसके साहित्य पर इस आजीविका के विचार का जिस मात्रा में बाँक पड़गा । उसी मात्रा में साहित्य की उत्तमता में क्षति हो जानी चाहिये, ऐसा मैं समझता हूँ ।

शिखा साहित्य/१३

-१२७-

हम साहित्य सेवी कम बन सकते हैं ? अच्छी वाता को सोचने और फिर उन अच्छी वाता को लिखने से । अपने को औरा म खाने और फिर दूमरा को अपने मे पाने स । प्रेम की साधना से और अहकार के नाश से ।

-१२८-

मुझे इसम शका ह कि मार्क्सिज्म समूचे जीवन को छूता ह । वह समाज नीति ह जीवन नाति नही ह ।

-१२९-

हिन्दी की एक निश्चित धारा है, निश्चित सस्कार ह । इसी प्रकार का उदू का एक अपना रख ह और अपनी सरतीव है । जबरदस्ती दोना का मेल कराने का नतीजा दाना को अपना गूबियों से हाथ धाना हागा । और इस तरह जो चाज बनगा वह भापा तो होगी नही विडम्बना हागी ।

-१३०-

साहित्य सच्चिदानन्द की प्याग और राज का प्रत्यपण ह ।

५४/सूक्ति गचपन

-१३१-

बुद्धि मिली है इसीलिए । वह भरमाती है इसीलिए कि आदमी भटके, आस पाये और सीखे । इसीलिए बुद्धि जिन्हाने पाई नहीं वे पशु सुख से हैं । अपने अन्तमृत नियम से तदगत होकर जीते-मरते हैं और ध्यय परेगान नहीं होते ?

-१३२-

मनह को अपनी भाषा हाती है ।

-१३३-

भाषा पर मैं किसी की रोजना नहीं चाहता हू । भाषा है मायम मन उलभा हा तो भाषा सुलभी कैसे बनेगी ?

-१३४-

मानवजाति की इस अन्त निधि मे जितना कुछ अनुभूति भण्डार लिपिवद्ध है वही माहित्य है । और भी अक्षररहित रूप मे जो अनुभूति सचय विश्व का हाता रहगा वह हागा माहित्य ।



-१३५-

आत्म-चरित अपनी अनुभूतियों का समपण है ।

-१३६-

लेखन व्यक्ति के अन्तरंग की अभिव्यक्ति है ।

-१३७-

वनान से भाषा के विगठन का अन्देशा है । साचकर चलने से व्यक्ति का उस पर अहकार सद जाता है ।

-१३८-

प्रतिभा अपन प्रति अडिग ईमानदारी का कहते हैं ।

-१३९-

बड़ा दार्शनिक कच्चा व्यवहारन होता है ।

-१४०-

साहित्यिक रचना वह है जो अपन साथ अपन हा अन्त

५६/मूक्ति सप्यन

को और पाठक को दरबस, विस्मित, सभ्रमित,  
अप्रत्याशित भाव से खींचती ले जाय ।

-१४१-

जो भीतर कुण्ठा नहीं लेता ग्रन्थी नहीं उपजने देता, वह  
अवसर पर किसी से किसी प्रकार की वाता का आरम्भ  
कर सकता है ।

-१४२-

सरस्वती के फेर में लेखक निघन रहे तो तक से असगत  
वात नहीं है । यह निघनता उसकी सवेदना को और पना  
वनाती है ।

-१४३-

प्रश्न में जिनासा है, अभीप्सा है । उससे आदमा बढ़ता  
और ऊपर को उठता है किन्तु वही जब सगाय बन जाय  
तब वह खाने लगता है ।

-१४४-

घटना जो जगत में घटती है वही समय से बधी हानी

निशा साहित्य/५७

-१३५-

आत्म-चरित अपनी अनुभूतियों का समपण है ।

-१३६-

लेखन व्यक्ति के अन्तरग की अभिव्यक्ति है ।

-१३७-

बनान से भाषा के विगहन का अन्देश है । सोचकर चलने से व्यक्ति का उस पर अहकार लद जाता है ।

-१३८-

प्रतिभा अपन प्रति अटिग ईमानदारी को कहते हैं ।

-१३९-

बड़ा दार्शनिक कच्चा व्यवहारण होता है ।

-१४०-

साहित्यिक रचना यह है जो अपने साथ अपने ही अन्त

२६/मूक्ति सपथन

की ओर पाठक को दरबस, विस्मित, सभ्रमित,  
अप्रत्याशित भाव से खींचती ले जाय ।

-१४१-

जो भीतर कुष्ठा नहीं लेता ग्रन्थी नहीं उपजने देता, वह  
अवसर पर किसी से किसी प्रकार की वार्ता का आरम्भ  
कर सकता है ।

-१४२-

सरस्वती के फेर में लेखक निघन रहे तो तब से असंगत  
वात नहीं है । यह निघनता उसकी संवेदना को और पना  
बनाती है ।

-१४३-

प्रश्न में जिज्ञासा है, अभाप्सा है । उससे आदमा बढ़ता  
और ऊपर को उठता है किन्तु वही जब सणय बन जाय  
तब वह खाने लगता है ।

-१४४-

घटना जो जगत में घटती है वही समय से वधी हाती

और पुरानी पडा करती ह । कहानी की घटना जागतिर  
और मामयिक न होकर मानसिक होती ह इसलिए वह  
सनातन बन जाती है । पाठक क मानस पर पढन के साथ  
साथ घटित होत जान क कारण वह नित नूतन प्रतीत हो  
सकता ह ।

-१४५-

कहानी क लिए एक भवेला प्यार बहुत काफी है फिर  
सारे दूसर बाध नष्ट भी हो जाये तो कोई हानि नहीं ।

-१४६-

कहानी की गष्टि बाजार म नहीं उम निभूत गुहा म ह  
जहा पीढा अपन लिए स्थान पाकर दबी दुबकी रहनी है ।

-१४७-

जा गाम्भ्र म नहीं मिलता वह जान आत्म-व्यथा म मिल  
जाता है ।

-१४८-

एह लम्बे अर्से तक समाज का सुधार और कुरीति का

१८/मूर्ति सभ्यता

निवारण मानो कहानी लेखन के प्रेरणा-सूत्र बन रहे । 'नई कहानी अवगाहन में जाती है यह उसकी प्रगति शुभ है । लेकिन यह तो समग्र काल को ही गति है और जीवन विकास स्थूल से सूक्ष्म की ओर चलता ही है । आज सूक्ष्म संवेदनाओं के आवलन का प्रयास अधिक दीखता है घटना व घटाटोप का आग्रह कम है और यह शुभ लक्षण है ।

-१४६-

सच यह है कि लिखना कोई काम ही नहीं है । काम होता तो कवीर जुलाहे क्यों बन रहते और तुलसी ने भी कभी अपने को 'रायल्टी वाला' कवि क्यों न माना होता । यह सब इसलिये कि लिखना काम नहीं होता है । यह तो पश्चिम ने उसे घघा बना दिया है कम्यूनिज्म ने तो सबसे ही ठाठ का घघा बना दिया है । समाज और राज की महिमा ही कहिये कि जो चाहे बना दें । सच में गहर जाए तो जान पड़ेगा कि लिखने को काम मानना और घघा बनाना शुभ नहीं है ।

-१५०-

भाषा मनुष्य की तरह अपूर्ण ही है । वह कृताय बना है जहां कम संकेत करती है । वह मृत्यु का आग्रह दती नहीं केवल साभार लेना चाहती है ।

दिनांक मार्च/५६



**काम, प्रेम : सौन्दर्य**





-१४०-

प्रेम और मधुन में अन्तर है। मधुन प्रकृतिगत है पर प्रेम में वेदना है। मधुन दहज है पर प्रेम उत्तरात्तर देहातीत। प्रेम में सहने की सामर्थ्य चाहिये, वह आयास माध्य है। मधुन तृप्ति रूप है प्रेम अभाव रूप है।

-१४१-

स्त्री से पुरुष को खुशी नहीं मिल सकती। जब तक पुरुष है वह अधूरा है इसलिए मैं विवाह को अनिवाय धम मानता हूँ। पुरुष रहे और स्त्री से निरपेक्ष रहे यह असम्भव है। निश्चय नहीं, यह अनिश्चय है। स्त्री हो और पुरुष को उपेक्षा देकर वह जीये, यह असम्भवता है अस्मितायता है।

-१४२-

सपन और प्रेम को उस परम्पर पूर्व स्थिति का समझ कर जो व्यवहार साधा जाएगा उसमें प्रेम महजता से अपायित्व हाना जाएगा।

-१५३-

महात्म्य सती का ही सुना है । कुमारी ब्रह्मचारिणी की महिमा सुनने में नहीं आई । और पत्नी हो सभी तो कोई सती हाती है । सती होने के लिए क्यों पत्नी होना आवश्यक है ? जो पति बन सकी ही नहीं वह क्या फिर सती भी बन सकती ?

-१५४-

रूप भ्रम में नहीं होता अन्तरंग में होता है ।

-१५५-

रूप देखने वालों की आँखों में है ।

-१५६-

विवाह विधि की लकीर में स्वर्ग और नरक अलग होते हैं ।

-१५७-

प्रमत्त ही प्रिय है पर प्रमत्तता दुःख है । दुःख में से सृष्टि हानी है ।

१६/शुद्धि मपदन

काम और कामना खराब चीजें नहीं हैं। चीज खराब ब्रह्मचर्य भी नहीं है। पर दाना आपस में रूठते हैं तब खराबी पदा होती है। मैं नहीं जानता कि ब्रह्मचर्य काम को पोषण क्यों नहीं दे सकता। ईश्वर अनन्त काम रूप जगत का संचालन करता है तो क्या इसी सामर्थ्य से नहीं कि वह स्वयंम निष्काम है।

लोग जब बहुत निकट होकर एक दूसरे को मिलते हैं तब उनकी स्वभाव विषमताएँ एक दूसरे को स्पष्ट करती हैं। उस समय तो उन्हें एक प्रकार का स्पष्ट सुख होता है, जस फोड़े को हल्के हल्के छूने में। जब और पास आते हैं तब स्वभाव की उभरी हुई विषमताएँ टकराती हैं।

प्रमम भयादात्रा की सृष्टि हाती है।

वह प्रम भयावह है जिसमें अभाव नहीं तृप्ति है।

-१६२-

प्रेम म नियम नहीं होता । नियम आदमी बनाता ह । प्रेम पर उसका बम नहीं । वह एसी चीज है जैसे भूबम्प ।

-१६३-

प्रेम आदमी को निबल जाना है ।

-१६४-

सौंदर्य ईश्वर के ऐश्वर्य का रूप ह मोक्ष्य गविन है, सौंदर्य आदम ह । वह स्फूर्ति बना है पवित्रता देता है बलि की प्रेरणा देता ह ।

-१६५-

स्त्री को प्रेम की सफरता पर कृतृत्व मितता ह जबकि पुरुष का कृतृत्व उम सफरता पर समाप्त होता है ।

-१६६-

प्रम स्वयम् अपनी दरया सहना भोग्याता है । जिद्योह किरह प्रमो का आप ही रम प्रम बन घाता है ।

६६/गृत्ति मचपन

-१६७-

प्यार की सेज तो बाटे की होती है, उसको आग में आराम जले बिना रह नहीं सकती ।

-१६८-

भोग से व्यक्तियों के बीच का अन्तर बढ़ता है और समय से उनमें प्रेम दूढ़ होता है ।

-१६९-

जो चीज एक ओर से दूर को पास करती है, वही दूसरी ओर से पास को दूर बना देती है ।

-१७०-

प्यार में म आदमी कष्ट पाता है और कष्ट देता है और वही किसी ओर किसी का काम नहीं चल सकता ।

-१७१-

मरव घीत जाता है पर प्यार जीता रहता है । वीन अपना प्रेम को भूत पाता है । इसमें प्यार के जा लाग आए

राम प्रेम सौन्दर्य/६७

मानवता उन्हें भूल नहीं सकी । वे मदा उमके अन्तरग म घटक्ते रहेंग ।

-१७२-

प्र म ही क्या जीवन नहीं है ? उमसे वचित होकर व्यक्ति मसे न जड हो जाए ?

-१७३-

प्रेम म हमे स्वाद आता है पर प्रेम अपने को द डालने की आतुरता के सिवाय क्या है ?

-१७४-

प्रेम और नहीं वह विश्वास ह । प्र म म कामना नहीं हो सकती इसमें इतनी अपूणता ही नहीं हो सकती । मच्चे प्र म का दूसरा नाम ह विश्वास ।

-१७५-

प्रेम जीवन को बहसान की वस्तु तो बन सकती है लेकिन जीवन उमके लिय स्वाहा नहीं किया जा सकता । जीवन तो दायित्व है ।

स्वच्छ और वास्तव प्रेम अधिपत्य आकाशा से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता है। वह उमकी प्रमत्तता उमका सुख उकेम मतोप की ओर सचेष्ट रहता है उस पर कब्जा कर लेना नहीं चाहता।

हम कहते हैं पति और पत्नी, प्रेमी और प्रयत्नी, माता और पुत्र बहिन और भाई वह ठीक हैं। वे तो स्त्री-पुरुष के मध्य परस्पर योगायोग के माग से बने नाना सम्बन्धों के लिए हमारे नियोजित नामकरण हैं। किन्तु मन्त्र कुछ बात तो ममभाव से व्यापी है। सब जगह स्त्री-पुरुष इन दोनों में परस्पर दीखता है आशिक सम्पण आशिक स्पर्धा। मन्त्र वही एक दूसरे के प्रति इतना उन्मुख है कि वह उमको अपने भीतर समा लेना चाहता है।

दा मन्त्रे व्यक्तिया के बीच स्वच्छा पूर्वक अपनाया गया त्यागमय विद्योह ही मन्त्र है। उस विद्योह में स्नेह का अधिष्ठान है। भोग एकदम गलत है। क्योंकि भोग में स्नेह की मह्यता नहीं स्नेह की समाप्ति है। स्नेह विद्योह



म ही जाता है, जलता है, पलता है, इससे स्नेह का सार है विरह । भोग का सूत्र ह त्याग ।

-१७६-

प्यार सपने से होना ह सच से हो तो उसको सपना कर देता ह । और सपने पर मन चलता ह काम नहीं चलता । सपन मे मन स उडने है सच पर पाव से टिकत ह ।

-१८०-

प्रम की बात प्रम स अलग चीज ह । प्रम म पहर शकसर बात सूभनी ही नहीं ।

-१८१-

प्रम गडढा छाड़ जाता ह । बाल का काम ह बठा-बठा एम गडढा का भर ।

-१८२-

अनादता क पीटाणु मय की धूप स हा मरेंग अन्ना म उन्ह लुमान छुपान का नाति स व अंधरा पानर आग ना बड मयत ह । युगा अंधर म पनती ह । हवा और

धूप लगने से वह छू होती दीखती है ।

-१८३-

विवाह समपण का सम्बन्ध है । और समपण की भावना उसाके प्रति सम्भव है जा सवथा ज्ञात ही नहीं है वल्कि जिसमें अज्ञात काफी कुछ है ।

-१८४-

मरा म्याल है कि मानवजाति ने नाना काला और दशो म सभोग के नियमित करने की आवश्यकता को लेकर तरह-तरह के प्रयोग और परीक्षण किये होंग विवाह वसा ही एक प्रयोग है । यह सभोग के लिए नहीं है, सभाग को सयत करने के लिए है । इसलिये मैं मानता हूँ उसका आधार भोग नहीं, विसर्जन है ।

-१८५-

एक तरह से भाग क लिय समार नहीं है । पर, कतव्य स्वयम ही क्या उपभोग्य नहीं हैं ? कतव्य कम करने के बाद जो आनन्द व्यक्ति को प्राप्त हाता है कपयिक तृप्ति उसकी समता कर मन्ती है ? इसलिये यह कहा जा सकता है कि भोग भी कतव्य म ही समाया हुआ है नहीं ता विवेक हीन

होकर भोग ता दुख ही पदा करता है ।

-१८६-

भत्मना बनायी वनी नारी का नहीं है बल्कि हम मवकी है ।  
उम पूरे समाज की है जहा नारी को रूप-जीवी बनना  
हुआ है । मूल्य जब तक आर्थिक रहेगे वश्या मौजूद  
रहेगी । वश्या चिन्ह है गेग का निदान भीतरही है । भोग्य  
हाकर नारी वस्तु बन जाती है जबकि है वह ध्याक्त । पमा  
यही मल करता है । चेतन को जड कर उम पश्य पदाथ  
बना मता है ।

-१८७-

मैं भाग का याग क विराध म देख नहीं पाता हूँ । जम  
कि वचपन का युगावस्था के विरोध में नहीं देख पाता हूँ ।  
भाग को नष्ट करके काई याग मधगा यह भ्रान्त धारणा  
है ।

-१८८-

काम (मग) पमा कामना म मलग धाज है ? कामना  
का मुख्य रूप काम है । या भी कह मरत है कि विविध  
कामनाया क नीचे मुख्य मव काम प्र रणा है ।

७२/मूक्ति मबयन

-१८६-

विवाह सामाजिक सस्था है। उसमें परिवार बनता है जो समाज की इकाई है। उसे कवल दो का निजी सम्बन्ध समझना और उस आधार पर विवाह को स्थापित करना गलत होगा। क्योंकि तब उसकी भूमिका सामाजिक न होकर कामुक होगी।

-१९०-

मौन्दय स्वास्थ्य से भलग आर क्या है ?

-१९१-

विवाहकी ग्रन्थी दा के बीच की ग्रयो नहीं है वह समाज के बीच की भी है। चाहने में ही क्या वह टूटती है ? विवाह भावुकता का प्रश्न नहीं व्यवस्था का प्रश्न है। वह प्रश्न क्या या टाल टन सकता है ? वह गाठ है जा बधी कि खुल नहीं सकती टूट तो टूट भल ही जाये। तकिन टूटना कब किसका ध्येयस्वर है।

-१९२-

ऊपर से प्रभावित करने की इच्छा मन्दरम प्रभावित करने

को शक्ति के दिवाल का नाम ही हो सकता है। गुण का विश्वास नहीं तो रूप का शृङ्गार आवश्यक हो ही जाना चाहिए। रूप—सज्जा की शर ध्यान कम तभी हो सकता है जब गुण का शर ध्यान अधिक ही।

१६३-

भर विचार से देखने वाल के मन स अलग हाकर सोदय अपने आप म कुछ है यह प्रतिपादन करना कठिन होगा।

-१६४-

गुन्दरता सब जगह काम धान वाली चीज है। तपस्वो सुन्दर क्या न हो? पण्डित ना अपने को सुन्दर क्या न रग? कुछ शर गुण पोछे भी क्या न दोख सुन्दरता तो गामने म हो दिग्याई देती है। उरुस काम आसान होता है। सुन्दरता गुण है चाहो ता आयुष भी है।

-१६५-

धार धारे करके ही सोदय दूसर क मन म उतर भर घुलना जाना है। जा चीवाय यह सोदय विगप गहरा नहा हाना है। यह तो असमर उतर जान वाला—घुन रहन याता पदाय है।

७५/गृधिन मषयन

-१६६-

अच्छा बुरा होने वाले म नही देखने वाले की आँख म होता है ।

-१६७-

सौंदर्य कहाँ नही है ? सौंदर्य परम सत्य है परम सत्य की अभिन्न विभूति है सत्य की भाति सब ठौर व्याप्त है । जिसकी जहाँ आँख है वहाँ ही उसे वह नेत्र नेगा । इसीसे अम्बर नीला है धूप भस्मभवाती धौली गिलती है धरती हरी भाती है, रात तारा टकी यामल मुहाती है प्रभात गुलाबी अच्छा लगता है ।

-१६८-

स्त्री-पुरुष दोनो अपने मे अधूर हैं । पूरा अध-नारी-पुरुष है । इससे पुरुष स्त्री म न एीय यह सम्भव नही है ।

-१६९-

हमारा मर्यादा का तवाजा है कि प्रम और विवाह का समानांतर रेखा म चल । हमसे वे कभी मिलेंगे नही और एक दूसर पा पाटेंग भी नही । -

राम प्रम सोन्य/७३

-२००-

प्रमिका के लिए प्रम इसलिए हाता है कि वह पत्नी जो नहीं है।

-२०१-

स्त्री पुरुष के बीच भावपूर्णता है। वह वैज्ञानिक तथ्य है। आप उससे नाराज हो और लड़े या प्रमन्न हो और सराहें यह आपके वग की बात नहीं है कि उस मिटा दें। फिर ब्रह्मत्व को माधने वाली वह ब्रह्म की धर्या क्या है।

-२०२-

प्रम के विवाह में आगे प्रम नहीं रहता इतना ही नहीं बल्कि प्रम का धरणा बनना पड़ता है।

-२०३-

पति के मन में प्रमी का मान हो। ईर्ष्या और विग्रह का उचित माना जाना समाप्त हो जाय। उसी तरह पत्नी में पति की प्रयमी के लिए आदर हो चलना चाहिए। मौतिया-डाह की भाँति यदि परम्परा है तो मानना

७६/गूँडिन सचयन

चाहिए कि वह बबर युग की ह। उमम मनुष्यता नहीं पगुता ह।

-२०४-

अथ एव काम का समाहार प्रेम से अन्यत्र कही नहीं है।

-२०५-

स्वग अपने अपने सबन रचे हैं। सब म कितनी भी भिन्नता हो, इस बात में वहा समानता है कि प्रेम वहाँ मुक्त है। और वहा मर्यादा नहीं ह अभाव नहीं ह।

-२०६-

प्रेम तो एक रगीन स्वाव है जो आँखा की बजह से बाहर हो जाता है। यो वह कही है नहीं।

-२०७-

श्री और पुरुष के मध्य जो आकषण है वह परस्पर उन्हें आत्मदान में मिलाये बिना रह नहीं सकता। यह आत्म विसर्जन और आत्मदान की अनिवायता मूलगत और टिकने वाली है। यह सब मनुष्य पर है

काम, प्रेम सौन्दर्य/७७



कि उसे अध्यात्म वृत्ति से लेकर उपयोगी करे या  
तिरस्कार के भाव में अवहलित करें।

-२०८-

पति वास्तविकता है। वही टिकता है वह सपना नहीं है  
कि उड़ जाय।

-२०९-

स्त्री इसलिए नहीं है कि पुरुष को अपनी ओर ल। उगवी  
कतायता इमर्म है कि वह पुरुष को भाग उत्तरोत्तर कर।  
वह पीछे रहने को है इसलिए कि किंगी भाति पुरुष पीछे  
न हो पाए।

-२१०-

पुरुष अपने में पूरा ही करता तो सृष्टि के विधान में  
स्त्री की आवश्यकता न थी। एमे ही स्त्री अपने में पूरा  
हो पाता तो पुरुष अविद्यमान हो रहता। दोना यदि हैं  
आर परस्परता के बिना धारा नही तो विग्रह विज्ञान  
ना जाना रहे गीय की भूमि अत्यंत आवश्यक है। पति  
पत्नी-सम्बन्ध विग्रह के बाव गधि के लिए एक श्यायी  
भूमिना देना है।

७-गुक्ति गनयन

-११-

स्त्री की लगन स्थूल की ओर विशेष रहती है। सूक्ष्म की लगन प्रतिभा कहलाती है।

-२१२-

अस्तासता का सम्बन्ध मनोभाव से है। भूठ गिना अन्तोल हो सकता नहीं और जहा भूठ है वहाँ अश्लीलता के बीज अवश्य है।

-२१३-

पुष्प को स्त्री चढ़ायेगी, चढ़ात जायगी यहाँ तक कि या चाहे दुलभ पडकर वह स्त्री के लिए खो हो जाये। लेकिन मुडने स्त्री उसे नहीं देगी। भाग-ले सकती है फिर भी अपने समक्ष और आगे उसे ठेकत जाने क घम से स्त्री विमुख नहीं हो सकती।

-२१४-

स्त्री क्या चाहती है ? अधानता और स्वतन्त्रता। गायद एक माय नाना चाहती है। स्वतन्त्र हानर निमी का अपन अधीन रखना और पूरी अधीन नकर निमी को

बाम प्रम मोक्ष्य, ७६

अपने ऊपर सबका स्वतंत्र पाना ।

-२१५-

नारी यदि कातर है तो वही एक जगह सतेज भी है ।  
स्नेह व पक्ष म ही वह कोमल है पर उस स्नेह को लेकर  
ही वह अतिशय दृढ़ हो सकती है ।

-२१६-

मुष्टि—बल म मनुष्य को प्रबल मान भी लो पर वाक—बल  
म स्त्री के आग मनुष्य काई भी चीज नहीं है ?

-२१७-

अपन स्त्रीत्व पुरुषत्व को आगण्ड रखन के लिय हम नहीं  
मिर्जे गय हैं । हम एक दूसरे म अपना विलय सोजना  
होगा । नहीं तो मफसता नहा परिपूराता नहीं । भगवान  
अध-नाराश्वर है तो क्या ? इसलिए कि काई अपने को  
वचान म वक्त न रह ।

-२१८-

जो आमा माचना है कि नारी नरक को घोर ले जान वाली

८ / मुक्ति सपथन

है तो ऐसा साधु वास्तव में साधु नहीं है ।

-२१६-

प्यार में व्यक्ति अपनायास निस्व बनता है अर्थात् स्वत्व को निछावर कर डालना चाहता है । प्यार के अतिरिक्त जब हम अपने पास कुछ रोक रखते हैं तो अमल में उस वहाने अपने स्वत्व को ही अपने पास संचित आर सुरक्षित बनाये रखना चाहते हैं ।

-२२०-

प्यार एक प्यास है ।

-२२१-

यह समुद्र है । प्यास लगेगी तो उसके पास जाओगे ? पानी ही पानी है लेकिन पियोगे ?

-२२२-

मैं हर दावा से ऊपर तुम्हारी हूँ । और तुम्हारे निकट सदा अभय हूँ । मुझसे ज्यादा यह तुम जानत हो सागर मर्यादा नहीं तोड़ सकता है । इस सम्बन्ध में वह

राम प्रेम सोनप/८१

विवग इसलिए है कि वह सागर है। तुम भा विवग इसलिए हा कि तुम म प्यार है। तुमन कभा चाहा नही लेकिन हर क्षण तुम्हारे प्राग में प्रकट रही हू और हो सबती हू। लेकिन उस नग्न प्रकटता का तुम्हार निकट कोई उपयोग न हो सकगा यह जानती हू। इसीलिए पति को विना खबर दिये भी तुम्हारे पास चली आती हू। क्योंकि इस प्यार का सत्त जा मुझे तुमसे मिलता है, उसके बल स पति के निकट कभी मैं भूठ नही पढ सकती हू।

-२२५-

पुष्प म स्त्री से यदि दूरी रह ता क्या जममे चाह म तीश्रता नही आ जायगी।

-२२४-

विवाह के बाद कोई कया 'पुत्री' नही रहती एकदम पत्नी हा जाता है। अर्थात् उसका स्वत्व हस्तांतरित हो जाता है।



**अर्थ : कर्म**



-२२५-

भ्रष्टाचार अथ सभ्यता का फल और बल है ।

-२२६-

पसे म शक्ति है । शक्ति म मद है । मद विप ही ठहरा ।  
उमम स्वतन्त्रता की हानी है ।

-२२७-

व्यक्ति का विकास सामाजिकता म है । उसकी परिपूर्णता  
समाज से विलग नहीं देखी जा सकती । इसलिये पदाथ  
पर अधिकार और स्वत्व भी व्यक्ति मूलक नहीं हो सकता ।  
स्वत्व यदि है तो सब का है, समाज का है ।

-२२८-

आप पस धाला होना इस और को उसमे वचित रखना  
है । और यदि कोई पसे धाला बनता है तो मरा ख्याल है  
इस कारण उसे बल्कि निम्न समझना चाहिए ।

अथ ५५/८५





-२२५-

भ्रष्टाचार अथ सभ्यता का फल और बल ह ।

-२२६-

पसे मे शक्ति ह । शक्ति म मद है । मद विष ही ठहरा ।  
उसम स्वतंत्रता की हानी ह ।

-२२७-

व्यक्ति का विकास सामाजिकता म है । उसकी परिपूर्णता  
समाज से विलग नहीं देखी जा सकती । इसलिये पदाथ  
पर अधिकार और स्वत्व भी व्यक्ति मूलक नहीं हो सकता ।  
स्वत्व यदि है तो सब का है, समाज का है ।

-२२८-

आप पस वाला होना दस और को उसमे वचित रखना  
है । और यदि कोई पसे वाला बनवा है तो मेरा ख्याल है  
इस कारण उसे वल्वि निम्न समझना चाहिए ।

अथ कम/८५

-२२६-

जिसको शोषण कहा जाता है, उसकी जड़ में सकीर्ण स्वाथ की वृत्ति है।

-२३०-

पसे ने परिश्रम का सम्मान नष्ट कर दिया और उस किराये की चीज बना लिया।

-२३१-

किन्हीं दो के बीच अगर दास्ता और प्रभुता का सम्बन्ध रहने दिया जाता है तो उस रोग का उत्पन्न स्वभावतः डिक्टेटरगाही में सम्पूर्ण होता है। इस अर्थ में कहा जा सकता है कि पूरा जीवाद डिक्टेटरगाही का जन्म देता है।

-२३२-

जिस यंत्रण कारण मानव सम्बन्ध विगड़े जिगमे दो व्यक्ति या के बीच मालिन और मजदूर का सम्बन्ध बनता है। वही निर्पिद्ध है। एक मालिन हो दूसरा मजदूर है। यह स्थिति समाज के लिए विषम है और इसमें विस्फोट का बीज है।

-२३३-

शुद्ध पसे वाला होना भिखारी के भिखारीपन में सहायी  
होना है । धनवान होना निधन का व्यग करना है ।

-२३४-

धर्म के फल से बचना सम्भव ही नहीं है कारण कि फल  
धर्म से अलग नहीं है वह क्रिया के साथ ही है ।

-२३५-

जो धर्म किसी भीतरों प्रेरणा से नहीं, बाह्य आकाशा में  
प्ररित है वह कदाचित् ही हितकर होता है ।

-२३६-

धर्म का पराक्रम तो योथा गव है वह दूर जाता है और  
सम्राट मरने के साथ ही मर जाता है ।

-२३७-

धार्मिक जय तक ध्येय और मिशन रही दूर रही, तब तक  
उसमें भाव नहीं, तब तब उगम आदेश की प्रेरणा

धर्म धर्म/८७

प्राप्त की जा सकी है। उसके घटित घटना होने के बाद दवा गया कि मन्जिल अभी आगे है और क्रान्ति प्रत्यक्ष समक्ष होकर भ्रमभर रह गयी है।

-२३८-

जिन्दगी में दो चीजें हैं विचार और काम। भ्रमल मता ये दो नहीं होनी चाहिये। उनमें पूर्वापर सम्बन्ध होना चाहिये। करना विचारने का फल होना चाहिये।

-२६-

य अपराध करन के सत्याग्रह और फासी चढ़ने का दृष्टान्त कहते हैं। कानून तोड़ने की व अपना धर्म तक बना रहते हैं। विद्रोह उनका काम मांग है विप्लव उनका जीवन। व एम चार हैं जा सीना जोर भी है। अपराधी गुल्म गुल्मा बनकर व समाज के नेता और इतिहास के उन्नायक बनते हैं।

- ४० -

काम अनिवाद्य है और मनुष्य निराल स्वतंत्र नहीं है। काम की परिधि में घिरा है उस परिधि के भीतर स्वतंत्र नहीं है। परिधि से बाहर भागकर वह नहीं जा सकता।

वह अपना दुर्भाग्य समझे या सौभाग्य, जग का तन्त्र ही ऐसा है ।

-२४१-

सब के माग भिन्न भिन्न हैं यद्यपि सबक अन्त एक हैं । वह माग किसी के लिये भी मखमल विद्या नहीं है वह तो दुषय ही है। जो उस माग पर चलना ही नहीं आरम्भ करते उनका वात छाड दो—व ता सचमुच निरकुश रह कर जो जी चाहा उसम भूले रह सकत है । पर जा माग पर चलने के अधिकारी हो गये, फिर उह जी चाहे जा करने का अधिकार नहीं रहता ह । उनका तो माग खड्ड की धार को तरह एक रेखा रूप निश्चित और सक्ता बन जाता ह ।

-२४२-

ऊचाई आदमी की आमदनी क वगवर होती ह या कहना चाहिये स्वच के बराबर ।

-२४३-

हर आदमी क पेट एव ह मगर हाथ दा है । इम तरह यह अरण नहीं है धन है । तबिन हमारी समाज व्यवस्था

दूषित हा ता वही श्रृण हा भवता है ।

-२४४-

गांधीजी कहते थे कि मरी कई दुकान बन रहा ह ।  
सचमुच दुकान की तरह अपने रचनात्मक सधो की पाई  
पाई का वे ध्यान रखत थ । करोडा रुपया लोग का  
लेकर अपनी दुकाना म लगान म उहान अपने अध्यात्म  
की धनि नही देखी । बल्कि इसी म स सत्यरूप परमेश्वर  
की उपासना का उहाने लाभ अनुभव किया । अपरिग्रह  
ही उन्हें कराडा के फणडा का सचालक बनन द सका ।

-२४५-

सद्भाव दिग्गजर पहन परिचय सीचा जाय साम् बनाई  
जाये फिर उग परिचय और सास म स पम गाचें जाय ।  
यह क्या है ? यह अनीति नही ह ?

-२४६-

दान दन का पहन ह । ग्गि गिना चन नहा मरता जन  
लिय, बिना नहा चल मरता । पुद्य या कोई अपने म पूरा  
बन नही ह । औरा क गाय गिनी न किमी तरह क  
गयध म यह जुडा हुआ ह । इन गवधा के जगिय अपने

६० मृत्ति गणपत

लिये वह आपसोपन जुटाता है और अपनी आत्मीयता को फैलाता है। चेतना का स्वभाव ही यह है। शास्त्रकार न जीव का लक्षण परस्पोपग्रह कहा है यानि लेन देन क द्वारा आपस में एक दूसरे क काम आना।

-२४७-

ग्रहभाव से दिया गया दान दीनता और विपमता पोपन वाला और बढ़ान वाला है। धम अकिंचन भावना से दिया गया दान प्रीति और सद्भाव बढ़ायेगा।

-२४८-

सचमुच यदि हम दीन के प्रति प्रेम से खिचकर सेवा सहायता करना चाहते हैं तो उसकी दिशा यही हो सकती है कि हम और वह बराबरी पर आकर मिल। पर क्योंकि सब दीन धनिक नहीं बन सकने यानी मैं सबको धनिक नहीं बना सकता। इससे बराबरी का एक ही माग रह जाता है कि मैं स्वयं स्वेच्छा पूर्वक दीन बन चलू।

-२४९-

धनवान होने में स्वाद सभी तक है जब तक कि पडाम



म काई निघन भी है। अगर मुझे उस स्वाद का लाभ है वह रस मुझे अच्छा लगता है तो यह बात भूठ है कि मुझे दीन की दीनता बुरी लगती है। दीन क दन्य म मुझे जब तक अन्दरूनी तृप्ति है तभी तक स्वय घनवान हान की तृप्णा मुम्म हो सकती है।

-२५०-

भेद क लिये सहारा पस था न हो ता भेद रह कसे ?

-२५१-

पमा उठा लिया जाता है इमान का छोड़ दिया जाता है। उसकी कीमत पस की भी नहीं है। मैं जानना चाहता हू कि यह अनप कस होने म आया ? क्या यह जरूरी नहीं है कि जस पम को तरफ प्रीति का हाथ बढ़ता है वस ही बल्कि उसस भी अधिन इन्सान की तरफ हमारा प्रेम का हाथ बढ़े।

-२५२-

घर और दफतर म दूरी है उतनी जितनी स्नेह और स्वाप म। इसलिए अगर दफतर कद्र है तो घर पार है।

६२/गूँत मधयन

प्रत्येक व्यय एक प्रकार को प्राप्ति है। हम रुपये दते हैं तो कुछ और चीज पाते हैं। ऐसा हो नहीं सकता कि हम द और लें नहीं और कुछ नहीं तो वह गव और सम्मान ही हम लेते हैं कि हम कुछ ले नहीं रहे हैं। बिना कुछ हम दिये जब रुपया चला जाता है तब हमें बहुत कष्ट होता है। रुपया खो गया इसके यही माने हैं कि उसके जाने का प्रतिदान हमने कुछ नहीं पाया।

पसा है इसमें आनन्द भी है। मान लेता हू कि आनन्द का विधान आर्थिक है। जीवन का विधान और समाधान आर्थिक है। पसा चल रहा है इसी से जीवन चल रहा है। उनके चलाये चल रहा है जिनके कहने पर पसा छपता और बनता है।

दृष्टि सम्यक् हो ता श्रम ही धन है। इस दृष्टि से धन श्रमिक का है। इसलिये जो श्रमिक का है उस धन का वितरण ऐसा होना चाहिये जिसमें मुद्रा की तुलना में श्रम का और श्रमिक का महत्व बढ़े। श्रम और श्रमिक

म स्वावलम्बिता आये और पर निर्भरता दूर हा ।

-२१६-

स्वगवी उन स्वयाली कीमता म है जा हमन चीजा को  
र रगी है ।

-२१७-

यह सारी प्रसिद्धि और वभव मनुष्यता का व्यग करत  
दीपते हैं ।

-२५८-

लोग अथ का भाषा म इकोनोमी का विचार करते हैं ।  
सच म काम की इकोनोमी और भी मौलिक है । प्र म  
का यह अपरम्पार धन हम सहज प्राप्त हुआ है । मुद्रा  
धन तो कतना व्यापन कभी बन नहीं सका । प्र म तो  
हर एक के पास है ।

-२५९-

वहाटुर अमीरी को ठोकर मारता है बनिया कमस  
चिपटना है । बनिय को नगा कर छाटा । उसरा

वनियापन उतार लो । उम आदमी बनने दा ।

-२६०-

वहादुर अमीरी जीतता है वनिया उसे ठगता है ।  
वहादुर को सिर मुकाओ वनिये की अमीरी छीन लो ।

-२६१-

इम मभ्यता की उपज वे दसिया मजिला की हवेलिया  
हैं तो गिजविजाती चाले भी है । दृष्टि का छत्र है वह  
जो वह अलग दिखाना और बताता है । ये दोना मिरे  
परस्पर को अमत हैं और एक हैं ।

-२६२-

मनुष्य अपने का गिन और दूसरे मनुष्य को भी गिने  
इस नाते की वह मनुष्य है । वह इज्जत दे और अपनी  
इज्जत मान । यह स्थिति आयगी तब जब पने का मूल्य  
मनुष्य से निरपेक्ष और स्वतंत्र न रहेगा ।

-२६३-

हम्यों म गमारी ओर घुटिया म धीतरागी निवास करते

मुन जाते हैं। शायद कारण कुटिया का छुटपन और हवेली का बडप्पन न हाकर यह हा कि हवेली मुहल्ले म घिरी है और कुटी वनाकाश म मुक्त।

-२६४-

मच ता यह है कि जिस गुलापन चाहिये वह मकान के षवर म ही न पडे। मकान वही जो घिरा है।

-२६५-

सामान बढाकर और बटोरकर महानुभूति से आदमी हीन हाता है। महानुभूति उढने पर सामान अनिवायत ही कम होना जाता है। क्याकि वह आमपाम बटता जाता है।

-२६६-

जापान की औद्योगिक मफनता का एक राज यह भी है कि मनीन म ती उमन काम लिमा लेकिन उत्तम घरेलूपन का निवाहा। इममे श्रम की किम्मत वहा महगी नही हुई और श्रम समस्या भी उतनी बिपम नहा हुई। इमतिये सस्तेपन म वह सब दंगा को मान कर सका।

घस्त्र लोक जीवन के लिए अनिवाय है। उससे मर्यादा शीलता और शुचिता का रक्षण होता है। वह घासना पर आवरण है। पर नहीं वस्त्र वही तक नहीं रहा है। घासना को ठकन नहीं दिखाने या बढ़ाने तक का साधन वह होने लगा है।

-२६८-

घटे व्यावसायिक उद्योग दूटे इसकी सीधी राह यह है कि मैं नैतिक भावना से कोई भी छोटा-मोटा उद्योग गुरु पर दू।

-२६९-

उपयोगिता की दृष्टि से आपके लिए उपयोगी वही वस्तु हो सकती है जो कल या परसों अनुपयोगी हो जाय। जिमम अनुपयोगी होने का सामर्थ्य नहीं, वह वस्तु उपयोगी ही नहीं है।

-२७०-

घाली वस्तु भारी हो जाता है, धाम में काटो तो कट

सुन जाने हैं। गायद कारण कुटिया का छुटपन और हवला का बढप्पन न होकर यह हो कि हवेली मुहल्ले म घिरी ह और कुटी बनावश में मुक्त ।

-२६४-

मच ता यह है कि जिसे खुलापन चाहिये वह मकान के चक्कर म ही न पड़े । मकान वही जो घिरा है ।

-२६५-

सामान बढाकर और बढोकर महानुभूति से श्रादमी हीन हाता है । महानुभूति बढने पर सामान अनिवायत ही कम होता जाता है । क्याकि वह आमवाम बटना जाता है ।

-२६६-

जापान की औद्योगिक मफलता का एक राज यह भी है कि मशीन मे तो उमने काम लिखा लखिन उमम परेलूपन का निवाहा । इममे श्रम की किम्मत वहा महगो नही हुई और श्रम समस्या भी उत्तनी विपम नही हुई । इमलिये मम्तेपन म वह सब देगा को मात पर मक् ।

वस्त्र लोक जीवन के लिए अनिवाय है। उससे मर्यादा शालता और शुचिता का रक्षण होता है। वह वासना पर भावरण है। पर नहीं, वस्त्र वही तक नहीं रहा है। वासना को ढकने नहीं, दिम्बाने या बढ़ाने तक का साधन यह होने लगा है।

घड़े व्यावसायिक उद्योग दूटे, इसकी सीधी राह यह है कि मैं नैतिक भावना से कोई भी छोटा-मोटा उद्योग शुरू कर दूँ।

उपयोगिता की दृष्टि से भाषने लिए उपयोगी वही वस्तु हो सकता है जो कल या परसो अनुपयोगी हो जाय। त्रिमम अनुपयोगी होने का सामर्थ्य नहीं, वह वस्तु उपयोगी ही नहीं है।

हाली वक्त भारी हो जाता है, धाम में काटो तो बट





-२७४-

जीवन एक कोरा सिद्धान्त ही नहीं है, वह आदर्श के साथ सम्भव सम्भोता है।

-२७५-

मनुष्य की क्षमता सचमुच अगाध है। वह पुष्ट हो सकता है सन्त हो सकता है और दानों एक साथ हो सकता है। ही मक्ता नहीं है, अपने हर क्षण में हर सास में वह दोना है।

-२७६-

भारमी वह महान नहीं है जिसके पास बहुत सामान है बल्कि महान वह है जिसके पास बहुत सहानुभूति है।

-२७७-

व्यक्तित्व से समाजत्व नष्ट होने के बजाय सही अर्थ में पुष्ट हो होता है और व्यक्तित्व हीन व्यक्तियाँ से जो बनता है वह समाज नहीं छत्ता होता है, अधिक से

व्यक्तित्व समाज/१०१

अधिक वह छावनी हा सकता है जो फिर मानवता का रूप नहीं है ।

-२७८-

जीवन क्या एक सत्यता ही है ? आनन्द वह नहीं है ?

-२७९-

जीवन का उद्देश्य है समष्टि के प्राणा के साथ एकरस हो जाना । व्यक्ति अपने को छिन्वा हुआ अलग अनुभव न करे, समस्त के साथ अभिन्नता अनुभव करे यही उसकी मुक्ति है यही उद्देश्य है ।

-२८०-

मनुष्य ही है जो परिवार में और समाज में जन्म लेता है । यानि स्वत्व को ही लेकर वह नहीं जो सकता । आरम्भ से ही परत्व के साथ नाता बिठाकर जाना उस सीखना जाना है ।

-२८१-

रचना कभी थ गस्कर हुआ है ? सात स्वती है उस

१०२/गूगलिन सचयन

कहते हैं गति रुकती है तब भी मौत है, हवा रुकती है वह भी मौत है। रुकना सदा मौत है। जीवन नाम चलने का है।

-२८२-

मानव क्षम, आदश और सम्भव का मेल है। चाहो तो कह दो वह सम्भोता है।

-२८३-

इन लोगों में जिन्हें दुजन कहा जाता है कई तह पारकर वह भी तह रहती है कि उसको छू सको तो दूध सी श्वेत सद्भावना का सोता ही फूट निकलता है।

-२८४-

हम सीमित हैं हमारा आदश असीम है। उन दानो सीम और असीम के तनाव में से जीवन का प्रादुर्भाव हुआ है।

-२८५-

आदमी के मरने की सम्भावना है तभी आदमी की

साथवता है । वह सम्भावना मिट जाने पर साथवता ही नहीं मिट जाती अपितु उसके हाने की कल्पना ही मिट जाती है ।

-२८६-

मौत से छिपन के लिए आदमी राज आदमियत की मौत बरदान्त करता है । जीवन से लोग चिपटत है और आत्मा को कुचल देत हैं ।

-२८७-

आदमी म जो है उस सबको आप स्वीकार नहीं करगे तो उसका हम्ब ही बनायेंगे महान नहीं बनायेंगे ।

-२८८-

व्यक्ति धवना होता नहीं माना ही जा सकता है । उस मानन में सदा ही जार पडता है । उसके लिए धम्माम और साधना की आवश्यकता होती है ।

-२८९-

जायन की गति सीधी तीर सा तो है नहीं, समस्त जीवन

१०४/शक्ति सचपन

सरिसप है । सिकुडकर बढना होता है वढकर श्रीर बढने के लिये फिर कुछ सिकुडना चाहिये । यानि आगे जाना पीछे सोचन के विना न होगा ।

-२६०-

हर व्यक्ति मे एक सनक हाती है । उस सनक का लेकर हम उस व्यक्ति का सस्ता चित्र भट दे सकते हैं जिसमे वह सनक ही उस व्यक्ति की पहचान हो । काटून की कला का इसी भेद से विकास हुआ है ।

-२६१-

व्यक्ति को हर क्षण ऐसा होना चाहिये कि वह एक म हाता और सब म भी हा एकाग्र पर सर्वो मुख ।

-२६२-

जीवन का नियम स्पर्धा नहीं सामन्जस्य है । मघप नहीं सहयोग है ।

-२६३-

मादमी म कितनी भी दुबलता हो बबरता भा हा, लकिन

गहराई में उसका देवत्व भी पटा हुआ है ।

-२६४-

आदमी में भगवान ही तो है जो करता है । वह भगवान विचारा आदमी की मुट्ठी में होकर चाहे तो शतान बनने तक तयार हो जाता है ।

-२६५-

अपन को याद रख रहना सबसे बड़ा दुःख है भूल जाना सुख । जो जितना ही कम अस्मित्व है वह उतना ही महान अस्तित्व है । व्यक्तित्व (या अस्तित्व) सम्पादन के लिए अस्मित्व का संग्रह नहीं उत्सर्ग चाहिये । इसीसे देखते हैं कि जो आग बढ़कर भरता है वह अमर बन जाता है ।

-२६६-

व्यक्तित्व अलग अलग तरह के होते हैं उनकी पूरणा भी अलग राह से मिलती है ।

- ६७-

आदमी अपनी सन्तति में जीता है । और कोई आदमी

१०६/शक्ति संचयन

मरना नहीं चाहता । यानि मनुष्यमात्र सन्तति द्वारा अपने जीवन को सदा कायम रखना चाहता है ।

-२६८-

व्यक्ति की उन्नति इसमें है कि वह स्वयं अपनी इच्छाओं पर विजय पाता चला जाये, क्योंकि इसीमें समाज की उन्नति भी है । व्यक्ति की आपाधापी समाज के सगठन सूत्रों को कमजोर करती है और उस व्यक्ति को भी असहिष्णु बनाकर अन्ततः जीएँ कर डालती है ।

-२६९-

सीधी भोली चिकनी दुनियाँ-दारी जहाँ गड्डो से वच वच कर सिफ पक्की बनी बनाई सड़क पर ही चलकर सन्ताप मान लेना पड़ता है कोई बहुत श्रेय की बात नहीं है ।

-३००-

जो मन नहीं मार सकता तिम भुवना और छोटा बनना नहीं माता, जिसे दूसरों की सुविधा और दूसरों को निभान की दृष्टि से भुवना और राह छोड़ना नहीं आता वह जिन्दगी में कभी कुछ नहीं बना पाता—जिन्दगी का सन्ताप भी नहीं ।



जीने में पहन करना हुमा करता था । अब दाना जुदा-जुदा काम है । करने को दफ्तर और जीने इत्यादि के लिये घर । समय इतना कम है और करना इतना अधिक है कि घर के लिये दिन का वक़्त नहीं बचता ।

असफल जीवन अपनी जकड़ चारा और छोड़ जाता है जा मनुष्य जाति के विकास पर बेठ की तरह काम करती है ।

मानव समाज की समस्याओं को भौतिक आधार पर समझना और खोलना मेरे ख्याल में इस हद तक अपर्याप्त समझा जा सकता है कि मनुष्य केवल भौतिक ही नहीं है उसमें आत्मा भी है । उसमें प्रेम का और प्रेम पाने की मांग भी है ।

अगर वर्तमान में हमें पूरा सन्तोष है तो भविष्य के लिए

हम शेष क्यों रहें ?

-३०५-

कठिनाइयाँ जिन्दगी में जरूरी चीज हैं। उनका सहारा आदमी अपने को जानता है और वस्तु स्थिति का जानता है। दुनिया में जो परस्पर का सम्मिलन आवश्यक है वह किन सिद्धान्तों पर होगा, इसका पता पारम्परिक रगड़ से ही होता है।

-३०६-

ध्वनि का गुद्ध यथाथ रूप क्या है इस तथ्य तक पहुँचना ही दुःख है।

-३०७-

बाहर का सब कुछ आदमी के लिये तब तक बेकार है जब तक कि वह किसी अपने में होकर मूत न हो जाय।

-६०८-

कोई यहाँ नितान्त स्वतंत्र एकाकी नहीं है—जो ऐसा

जीने में पहल करना हुआ करता था। अब दोना जुदा जुदा काम है। करने को दफ्तर और जीने इत्यादि के लिये घर। समय इतना कम है और करना इतना अधिक है कि घर के लिये दिन का वक़्त नहीं बचता।

असफल जीवन अपनी जकड़ चारा और छोड़ जाता है जो मनुष्य जाति के विकास पर वेड की तरह काम करती है।

मानव समाज की समस्याओं को भौतिक आधार पर समझना और खोलना मेरे ख्याल में इस हनु में अपर्याप्त समझा जा सकता है कि मनुष्य केवल भौतिक ही नहीं है उसमें आत्मा भी है। उसमें प्रेम दो और प्रेम पान की माग भी है।

अगर वतमान में हमें पूरा सन्तोष होता भविष्य के लिए

हम शेष क्यों रहें ?

-३०५-

कठिनाइयाँ जिन्दगी में जरूरी चीज है। उनका सहारा आदमी अपने को जानता है और वस्तु स्थिति को जानता है। दुनिया में जो परस्पर का सम्मिलन आवश्यक है वह किन सिद्धान्तों पर होगा, इसका पता पारस्परिक रगड़ से ही होता है।

-३०६-

व्यक्ति का शुद्ध यथाथ रूप क्या है इस तथ्य तक पहुँचना ही दुर्लभ है।

-३०७-

बाहर का सब कुछ आदमी के लिये तब तक बेकार है, प्रपंच है जब तक कि वह निमी अपने में होकर मूठ न हो जाय।

-६०८-

कोई यहाँ निरान्त म्यतत्र एकाकी नहीं है—जो तेमा

जाने म पहल करना हुमा करता था । अब दोना जुदा-जुदा काम है । करने का दफ्तर और जीने इत्यादि के लिय घर । समय इतना कम है और करना इतना अधिक है कि घर के लिय दिन का बचन नही बचता ।

- ०२-

अमफल जीवन अपनी जकड घारा और छोड जाता है जो मनुष्य जाति के विकास पर बेड की तरह काम करती है ।

- २०३-

मानव समाज का समस्याघा को भौतिक आधार पर समझना और खोलना मेरे म्याल म इम हतु स अपर्याप्त समझा जा सकता है कि मनुष्य बवल भौतिक ही नही है उमम आत्मा भी है । उसमें प्रम देने और प्रम पाने की मांग भी है ।

- ३०४-

अगर बतमान म हम पूरा सन्तोष हो तो भविष्य क लिए

१ ८/गूबिन सचपन

हम नेप क्यों रहें ?

-३०५-

कठिनाइयाँ जिन्दगी में जरूरी चीज है। उनके सहारे आदमी अपने को जानता है और वस्तु स्थिति को जानता है। दुनिया में जो परस्पर का सम्मिलन आवश्यक है वह किन सिद्धान्तों पर होगा, इसका पता पारस्परिक रगड़ से ही होता है।

-३०६-

व्यक्ति का शुद्ध यथार्थ रूप क्या है इस तथ्य तक पहुँचना ही दुर्लभ है।

-३०७-

बाहर का सब कुछ आदमी के लिये तब तक बेकार है प्रपञ्च है जब तक कि वह किसी अपने में होकर मूत न हो जाय।

-६०८-

कोई महा नितान्त स्वतंत्र एकाकी नहीं है—जो ऐसा

व्यक्तिव समाज/१०८

समझता है वह दायित्व स डरता है और वापुष्प है । सब कुछ उत्तरदायित्वों से बंधे हुए हैं ।

-३०६-

जो जिम्मेदार बना है वह उसीम लय हो जाता है-इसमें शोक और द्वन्द्व की बात क्या ?

-३१०-

दुनिया अतिविचित्र है और जाने यहाँ किसका क्या माल लग जाये । मोल यहाँ असली है नहीं । इसलिये मोल की तोल भी मनमानी है ।

-३११-

चतुर दुनियाँदार तनिक भवेनपन से घबरा जाता है ।

-३१२-

दुनियाँ मोम की धीज नहीं है और न किताब ही है जिसे पढ़कर गरम कर सकते हो । यहाँ जगह-जगह टक्कर खाना पड़ता है और समझना करना पड़ता है । जीवन दायित्व का खेल है पग-पग पर समझना है ।

११०/मूर्ति गणपति

-३१३-

रहने को सबके पास अपना कल्पना लोक ही तो है ।

-३१४-

मरने से जीना अच्छा है चाहे जीना सदोष भी हो ।

-३१५-

आधी आती है, बड़ी-बड़ी जोर की आधी । मालूम होता है सारी दुनियाँ उठ जायेगी । लेकिन कुछ रेत और फूस के सिवाय कुछ नहीं उठता है । आधी आकर चली जाती है और दुनियाँ अपने काम में लग जाती है ।

-३१६-

आत्मा की ओर में विमुख होकर सामारिकता भी प्रवचना है ।

-३१७-

दुनियाँ सहानुभूति की ही नहीं है स्वार्थ की भी है । पापद दाना है इसी से वह है ।



दुनियाँ म कई दुनियाँ हैं और आदमा म कई आदमा ।  
अमल म चेतना मे पत पर पत है इसलिये जा है वह  
निश्चित नही है । वह एक रूप भी नही है । क्या है सो  
कहा नही जा सकता । जा है अनिवचनीय है ।

सब जसे गिकार हो है वृथा हो एक दूसरे का गिकार  
बनाने का प्रयत्न करते हैं ।

ईश्वर और ममार विरोधी नही है । अर्थात् ममार म से  
ईश्वर को पाना होगा । ससार पर पीठ देकर मैं ममम्भ  
नहीं गनना कि आदमी किम तरफ चल सकता है ।

मनुष्य महज नहा जागता । काम-धाम म वह इतना व्यस्त  
रहता है कि दुष्गना हा उभ जगाती है यह दुष्क व स्पण  
मे ही उतरता है । इसलिए गिरिस्त्रिया का दूटना और  
लोगा व दुर्गा का बढ़ना इतिहास की प्रगति के लिये

आवश्यक होता है ।

-३२२-

बिना रहस्य के तो आदमी झूठा हो जाता है । कुछ सजीव है इसलिये कि कुछ रहस्य है । कुछ है जो पकड़ में नहीं आता । रहस्य तो जीवन का मम ही है । वह बचे तो कैसे ? प्रयत्न करने से वह और रहस्यात्मक हो जाता है ।

-३२३-

जो हम हैं वही हमारा जीवन नहीं है । जा होना चाहते हैं हमारा वास्तव जीवन तो बही है । जीवन एक अभिलाषा है ।

-३२४-

तारोफ की बात तो इसमें है कि अपनी आकाशमा को उन्मुक्त कर दिया जाये । अपने मन अरमाना का भाग्य के मुह पर पूरा करके दिग्गवर, एक विराट शक्ति के रूप को दुनिया की चक्काचौध के सामने स्तूपारार पयनावार सटा करके फिर उस ठोकर माग्कर व्यक्ति एक विजन कोठरा में जीवन का शेष घडियाँ निरपेक्ष निष्काशा, कृतकृत्य होकर घुपचाप बिता ८ और फिर

मिट जाय मेरे निकट यहा तारीफ की और यही आदेश की बात है ।

-३२५-

आप जानते हैं कानून की निगाह मे आदमी आदमी सब बराबर है । किन्तु आप यह भी जान सकते हैं कि आदमी कभी न सब बराबर हुए हैं और न होंगे । वह आदमी ही क्या जो अपने को धीरो स विगिष्ट न समझे ? और यह समझदार क्या जो आदमी म फक करना न जाने ?

-३२६-

व्यक्ति कितना विवश है उसने अपराध भी उसने नहीं है ।

-३२७-

हर व्यक्ति का अपना वृत्त है । किसी के बहुत निकट आन पर इसीमे अक्सर निरागा हाती है । तुम्हारा आफ अलग, दूसरे का अलग । लगता है कि गिप्ताचार से भाग उतर आने पर आपसी सम्बन्ध म एक विमोह उत्पन्न होता है और अधिकांश एक विषय को रचना हो

घलती है ।

-३२८-

बुद्ध और तुम्हें नहीं रोक सकता, यह ठीक है किन्तु स्वयं तुम अपने को नहीं रोक सकते, क्या यह भी ठीक है ?

-३२९-

दो क बीच कभी वह घट आता है जो दानो नहीं चाहते फिर भी दोनो विवश होते हैं ।

-३३०-

नकली आदमी बनकर जगत् से व्यवहार पानने में आसानी होती है । वहाँ मन नहीं आदमी का मान पूछा जाता है ।

-३३१-

लाग क्या समझेंगे, इसका बोझ अपने ऊपर लेकर हम क्यों अपनी चाल को सीधा नहीं रगते हैं क्या उसे निरद्धा धाढा बनाने की कागिण करत है ?

-३३२-

मान्तरिक का सामाजिक के रूप में स्वीकार्य होना आवश्यक है ।

-३३३-

सबकी अपनी अपनी जगह गाभा है । बालक में बुद्धिमानी अच्छी नहीं लगती । उसमें बचपन चाहिये ।

-३३४-

जन्म मन्दिर के बीच बूद-बूद नहीं होती वस ही भाड में आदमी आदमी नहीं रहता । भीड़ का अपने में एक अस्तित्व है एक व्यक्तित्व है । वह अतक्य है ।

-३३५-

सत्य ही आदमी का बल है । वह बत गाता या सत्य की राह से बूद-बूद आदमी में रिगता रहता है ।

-३३६-

धर्मध का वस्तु-जगत् की अधिक सुविधा चाहिये ।

११६/गुणि मन्थन

समय छाड़ सकता है इसलिए शक्तिमान असमय को अधिक देगा और स्वयं कम लेने को तयार रहेगा ।

-३३७-

आविष्कारक दुनियाँ को सफलता से विमुख रहे ह और प्रतिभायान् धनार्काक्षी नहीं होने । क्यों ? क्योंकि दुनिया की सफलता और धन की यथायता से ऊँची यथायता का उन्हें आभास होना है ।

-३३८-

सदा सबको बढ़ाना ही बुद्धिमानी है । रककर ही आदमी बढ़ता धनता है । बढ़ता जाए तो खटास भी थाग मिठास होती है ।

-३३९-

जल कर ही आदमी उजलता है ।

-३४०-

ध्यति केवल अपने में घटकर गिरता और दूरता ही है । यह अपने का मुक्त और म और सब म अथात निगिल म

ही कर सकता है ।

-३४१-

बच्चे में चोरी की भावना भयावह हो सकती है । लेकिन बच्चे के लिए बसी लाचारी उपस्थित हो आई, यह भीर भाव ही भयावह है ।

-३४२-

व्यक्तित्व जो जितना समृद्ध और सम्पन्न होगा उतना ही विरोधाभास का झीठा बंध होगा ।

-३४३-

जो ऊँची जगहों पर हैं कितने विद्यमान हैं । स्वयं होने की उनको उतनी ही कम मुश्किल है । स्वयं जितने समाप्त हो गए क्या उतना ही उनको साध्यजनित होने का प्रयत्न है ?

-३४४-

दृढ़ सत्य में जीवन सिद्धि है । जो बाधाओं से नहीं डरता यह ही सुख करता है ।

११८/शुक्ति संपन्न

-३४५-

गृहस्य कोई सुख का सेज नहीं वरन तप का घोर साधना का आश्रय है ।

-३४६-

ससार पाप स्थली नहीं पुण्य भूमि है ।

-३४७-

जो आश्वासन समाज पुरुष को दे सकता है, वह प्रेयसी नहीं दे सकती । समाज पुरुष के लिए बहुत आवश्यक है । उसके लिए एक मान का स्थान चाहिए ।

-३४८-

क्या एकदम ठंडे होकर बुद्ध किया जा सकता है ? धरती के अन्दर आग न रह जाये तो वह टिक सकती है ? इन्सान के अन्दर तिल न रह जाए तो वह जी सकता है ? दिल में हिंस्र होती है । बुद्ध हाता है जिसके लिए जीते हैं घोर जिसके लिए जोना तक भी पर सकते हैं ।







आदर्श : धर्म



-३४६-

धम से बड़ी शक्ति में नहीं जानता । पर जीवन में कटकर जब वह पथ और मतवाद का रूप धरता है तब वही निर्बीयता का बहाना और पाखण्ड का गढ़ बन जाता है ।

-३५०-

धम के नाम पर क्या जड़ता फलती नहीं देखी जाती ? पर वह तभी होना है जब धम का वाद अथवा मत पन्थ बना लिया जाना है ।

-३५१-

बिसी प्रिय लगन वाली किन्तु साथ ही अनिष्ट लान वाली धोज वो तजने का अभ्यास मयम ह ।

-३५२-

ससृति कही यहा वहा नहीं रहती है । जहा उत्सग है ससृति यहा से आदग प्राप्त करती है ।

-३५३-

पलक से ओझल करने से क्या सच्चाई को झोट में डाला जा सकता है ?

-३५४-

सत्य किसी से बहिष्कृत नहीं है न सत्य से कुछ बहिष्कृत है। भेद इतना ही है कि जितना और जो देखने जानने में आता है। सत्य उतन में समाप्त नहीं है। पर सत्य स वह अथवा भी नहीं है।

-३५५-

ऊँचे जाओ तो उतनी हवा सूक्ष्म होता है और सांस पर जार पड़ता है। ऊँचा होना इतने सुखकर नहीं है। मर्यादा वहाँ उतनी ही अधिक है जितना स्वतंत्रता कम।

-३५६-

श्रुत बात चिन्तनी होती है और मन उम सरलता से बाहर फेंक देना है। सच बात का सीक्वर निगलना हाना है क्योंकि वह जो के भीतर बहुत गहरी गई होती है।

बाज गड चलना चाहिये और उसको सिंचन मिलना चाहिए । फिर तो दरख्त के बड़े होने में कोई अचरज की बात नहीं है । यह आक्षेप की बाज छोटा है वृक्ष की विशालता को रोक नहीं सकता ।

सत्य स्थिरता से घिरा नहीं है न अनुशासन से परिवद्ध । काल भा मृत्यु ही है । काल, जो बनने और मिटने का आधेय है अतः स्थिरता सिद्धि नहीं है । गति भी आवश्यक है । जीवन अस्तित्व से अधिक कम है । उन्नति, प्रगति परिवर्तन आदि इसी जीवन की परिपूर्णता का अंग है ।

हम यही करते हैं, बहुत भराभा अपना बाध लेते हैं । एम मच का घाट भेत है । झूठ को ओढ़ लेते हैं । झूठ के ता पर हात नहा है वह चल नहीं सकता । चलना है तो मच के पग पर गवार हाकर । बुद्धिमानी के जोर पर जब हम उसी का चलाने की जिद करते हैं तो जिद गिरती है और लगता है जम हम गिरते जा रहे हैं ।

-३६०-

सहानुभूति म हान होकर मनुष्य का मुघार साधना सम्भवनीय काय नहीं ह ।

-३६१-

यदि कोई चीज स्वयम उत्कृष्ट हो तो उसे सतरा क्या हो ? वही सतरे को दूर कर देगी । सतरा निकृष्ट वस्तु को ही हा सतता है उत्कृष्ट का नहीं ।

-३६२-

मम्मान रक्षा मे बड़ी आत्मरक्षा ह । सत्य रूप आत्मा की रक्षा म जो मम्मान साया जाता ह वह साये जाने सायक ह ।

-३६३-

नागरिकता मनुष्यता की भूमिका ह ।

-३६४-

परमर का मूर्ति को परमात्मा बना देन वाली शक्ति मक्ष

१२९/मूर्ति सषयन

की भक्ति ही तो है ।

-३६५-

एक कपड़े को भड़ा कहकर इतनी शक्ति कौन दे देता है कि हजारों देशवासी उस पर कुर्बान हो जाये ? वह शक्ति कपड़े के टुकड़े की है या श्रद्धा की ? कपड़ा कुछ नहीं है, फिर भी भण्डा सब कुछ बन जाता है, सो क्यों ? क्या श्रद्धा के कारण नहीं ।

-३६६-

बीज को यह अधिकार नहीं है कि वह अपने को क्षुद्र माने । श्रद्धा का सक्षरण है उत्सर्ग ।

-३६७-

आवश्यक होता है कि मन्त्र सहोद हो कारण कि उसका नियम अपने में ही बाहर के समर्थन की अपेक्षा में नहीं है । समाज का नियमन करने वाला राज्य सदा समर्थन चाहता है अतः आत्ममर्षित व्यक्ति को सामन पाकर उमरो जमे धुनीती मिलती है । उसके लिये तब आत्म रक्षा की आवश्यकता ही आती है । इस आत्मरक्षा में जन्म ही होता है कि सन को वह दुष्ट मान और उसे समाप्त



करण का हर उपाय रहे। जैसे सन्त राज की आवश्यकता का स्वयम् इन्कार हो। इस तरह वह अराजनीतिक होकर भी अनायाम बड़े से बड़ा राजनतिक क्रान्तिकारी हो जाता ह।

-३६८-

अप्राप्य मे ही आदश का आरोप ह और वही पहुँचकर आकाशा गठनी है।

-३६९-

फरीर बनना होता है और फरीर के सब हैं। हिन्दु मुसलमान दुनियाँदारी को बातें हैं सच्ची यात म हिन्दु मुसलमान क्या ?

-३७०-

स्वयम् आदगवाद भी और धाना को तरह थोया होना है। वाद नही चाहिए आदग चाहिए।

-३७१-

आत्मा की आर यात्रा करन म मा स्थिति म मा युक्त रत्ना

१०८/श्रुति मधयन

है, उसका स्वभाव खुलता ही जाता है। जबकि आदश-वादी ध्यक्ति अपने स्व के घेरे का और मजबूत ही बनाता है।

-३७२-

मनुष्य अपने आदश का निर्माता होने में अधिक मानो आदश के हाथों अपने को सौंप कर, उसीको अपना निर्माता बनाना चाहता है। इसी अर्थ में कवि की श्रुति कवि से बड़ी है, मनुष्यता का आदश मनुष्य से बड़ा है।

-३७३-

यह तो आसानी से कहा जा सकता है कि धर्म प्रवर्तकों ने जो धर्म चलाया अनुयायियों ने आचरण तदनुकूल नहीं किया। उन्होंने धर्म का सम्प्रदाय के लिए एक नारा ही मान लिया।

-३७४-

हम अपने को जगत् का केन्द्र मानकर जीते हैं यह है विवृति। हम जगत् में शून्यभाव से जीयें यह होगी सम्मृति। अहता से शून्यता की ओर जाना विचार में मर्म्यार की ओर उटना है।

-३७१-

दुनिया का घम तात्त्विक तो नहा हो सकता । उसे तात्कालिक होना पड़ता है । इसमें शास्त्रों की सीधी उपदेग की बातें उसने लिये घसगन होती है । इस तत्काल घम का अलग ही शास्त्र होता है ।

-३७६-

एक के उदय के लिये दूसरे का अस्त चाहना भूल है ।

-३७७-

अध्यात्म न सिर्फ मसार में त्रिमुक्त नहीं है बल्कि मसार के अभाव में वह अचूक और पाला हो रहता है ।

-३७८-

धार्मिक को धमन का विरोध सहना पड़ा है ।

-३७९-

यह धार्मिक नहीं जो दूसरा क धम के प्रति प्रेम नहीं रख सकता ।

सस्वृति इस तरह मानव जाति की वह रचना है जो एक को दूसरे के भल में लाकर उनमें सौहार्द की भावना पैदा करती है। वह जोड़ती और मिलाती है। उसका परिणाम व्यक्ति में आत्मोपमता की भावना का विकास और समाज का सर्वोदय है।

- ३ १ १

सम्प्रदाय जबकि स्वयं धमगत न होकर धम को सम्प्रदायगत बनाता है तब वह निश्चय ही एक स्थापित स्वायत्त या स्वरूप होता है। इस व्यवस्था से वह जगत को समस्या को और उत्तम करता है और उसमें गांठ और पेंच पैदा करता है।

धार्मिकता से मनुष्य धार्मिक अधार्मिक है और अपने पाप में दुःखी और दण्ड पापी पुण्यात्मा है।

धम या सदन नहीं हो मरना धम में अपनी आहुति ही दी

जा सक्ती है ।

-३८४-

क्या कामना का होम ही घम नहीं है ?

-३८५-

घम इमान उत्तर है ता मफनता दक्षिण ।

-३८६-

घम जो उजलाता है हठ जा केवल जलाना है ।

-६८७-

उपयोगी कम म अपन को भूलकर लग रहना ही घम है ।

-३८८-

साधु यदि अलग है और गृहस्थ अलग । त्याग एत क लिए है और भोग दूसरे क लिए। एक क लिए अर्ध्यात्म और दूसरे क लिए पद थ । ता मयम का वह ताग्यो गया

१ सूक्ति मन्थन

जो एसी फाक बीच में डालती है जीवन की चौमुखी सम्पन्नता में बाधा भी बन सकती है ।

-३८६-

सच यह है कि समय में कही वाध्यता है । पूरी सहजता हो तो शायद शब्द बहा ओछा रह जायेगा ।

-३९०-

समय कत्त व्य है कत्त व्य धम में कुछ कम है । धम सहज होना और हो सकता है । वस्तु स्वभाव को धम कहा है ।

-३९१-

नैतिकता का ऐसा आग्रह जो तर बही अनौति सू घने का व्यग्र रहता है, मुझे लगता है कि एक ही साथ अश्लालता और दम पदा विये बिना नहीं रह सकता ।

-३९२-

भवतारी पुण्य ब्रह्मचारी दीपते नहीं हैं इसका यही कारण है । परमात्मा उन्हें कमता है अपनी कमोटी पर और स्त्री से और वियाह से बचने नहीं देता है ।

आचरण का है ।

-४०२-

धर्म आवश्यक है उसी तरह जैसे भक्तान्क लिए नीच आवश्यक होती है ।

-४०३-

धर्म की सफलता के लिए धर्म की स्थिरता जरूरी है ।

-४०४-

विज्ञानी का आचरण इस तरह आरम्भ से अन्त तक धर्माचरण है प्रतिपक्ष और सत्यद्वय आचरण है । इगोम महान् बनानिक् अनायास मत दीक्षता है । यह गिणु के समान गरल और निष्कपट होता है । सचाई में अनिरिक्त वह पुच्छ चाहता नहीं जानता नहीं ।

-४०५-

दुष्ट में और कलियुग में वह ईश्वर को देगन के प्रयत्न की भी नहीं मोचना । तम धार्मिक का आचरण अपनी मूल धाम्या के प्रति अनायास धर्महीन और श्रद्धाहीन है ।

१ ६/शुक्ति सचयन

जाता है । तब उस घम में से शक्ति प्रकट हो तो कैसे ?

-४०६-

त्याग भराव में से न आये यह हो नहीं सकता । उसी तरह यह भी कमे हा सकता है कि भीतर अभाव हो तो वहा में त्याग बाहर आ जाये ।

-४०७-

सयामी वह यात्री है जिसकी अभिलाषा समाज से पार हो आये । न उसे अब समाज की मायता चाहिये न सत्ता चाहिये । समाज का अवशा भी अब उससे नीची रह जाती है । मानापमान ममारी के लिये बहुत महत्व की बात है, सयामी को वह छूना भी नहीं है ।

-४०८-

नतिवृत्ता में से यदि यह नमूना ही प्राप्त होता है जा घम की और लोभ की वागडार को हाथ में घाम नहीं पाता हाथ उसके काप जाते हैं तो निश्चय है कि नीति को ताव पर रख कर घनन वाली तुली शक्ति मदान के नियम जायगी और दुनियां को लगाम को वह हाथ में उतर घलायेगी ।



तिक साधना अक्सर देखा गया है इस तरह हम मानवता के वह नमून दे आती है जो पवित्र है पर पील है। भल है पर भोल है। सज्जन है पर असक्त हैं। भक्त है पर गऊ है। ऊचे हैं पर वेवस हैं।

४१०-

अस्ला हो अक्वर और हर-हर महादेव पवित्र स पवित्र उच्चारण है लेकिन शरीर पर घटकर एक शतानी के सिवा के कुछ नहीं रह जात। तब व इंसानियत के दिवाने के घापणा हो जात हैं।

-४११-

एक काम के भलाई इतनी भर जाता है कि अजाम का मुगई भूल जाती है।



**विविध**



-८१२-

जीवित और शव में क्या अन्तर है--बस यही कि शव में से सम्भावनाएँ मिट जाती हैं। सम्भावनाएँ जिसमें से मृत्यु हुई कहना चाहिए आत्मा ही वहाँ से उड़ गया।

-४१३-

दुनिया को सुधारने का माग अपने को सुधारने के अलावा और नहीं है।

-४१४-

बुराई की हस्ती नहीं है। बुराई अपने आप में टिक नहीं सकती।

-४१५-

जीवित परम्परा आत्महीन नहीं होनी वह समाप्त नहीं होनी। उमम नाना रूपा और प्राण्या में विलत जाने की शक्ति प्रवाहित रहनी है।

हम जीते ही चलते हैं, बिना यह चिन्ता रखे कि कमर भी हमारे है। अन्त में एक दिन दद उठकर उस हमारी कमर को हमारे निकट ही प्रमाणित कर देता है।

-४२६-

हम तो चल ही मरते हैं पथ का अन्त तो पथिक के हाथ नहीं है।

-४२७-

मन का दुख क्या हमारे से मन की चोट से भरेगा ? आदमी एसा ही करता है दुख का दुख पहुँचाकर घोना चाहता है।

-४२८-

क्रोधोत्त का याव क्रोध नूय के लिये मदा जररम्न और स्पष्ट अयाय ही है।

-४२९-

यहा तुम अपने को अपने में मारो नुनिया पाने हो। हमारे हाथ पाने हो तुम दुनिया क निकट एर नूय जमा

१४४/सूक्ति मथपन

विन्दु भी नहीं हो ।

-४३०-

कुछ विगाह न हो तो सुधार क्या हो ? भगडा न हो मल का अवसर किधर से आये ?

-४३१-

स्वेच्छित मृत्यु मुक्ति है, मृत्यु का चित्र हमें सदा प्रत्यक्ष रहे तो क्षुद्रता में हम न गिरे ।

-४३२-

मृत्यु के द्वार में से ही सत्य को प्राप्त करना होगा ।

-४३३-

तर्क के उत्तर में तब न देना आदमी से नहीं होता और जब नीचे तल के साधारण तर्कों की बनी होती है तब ऊँचे या गहरे तल के तर्कों से काम लिया जाता है । इसी प्रकार का एक गहरा तर्क है ध्यग एक है ऋषि एक है धमवी, और एक है मृत्यु का स्मरण और आह्वान । लेकिन सबसे द्राघ्य और मूर्तिमान तब है आँसू ।

-४३४-

भागना तो नरक से भी डीक नहीं । क्योंकि नरक का भय फिर तुम पर सवार रहेगा ।

-४३५-

अपने स्त्री पुरुषा के बीच तुम ऐसे भूल जा रहे हो जैसे परमात्मा नहीं है और जवाब तुम्हें नहीं देना है ।

-४३६-

क्रोध सदा अपनी नासमझी में से आता है ।

-४३७-

जो सवधा निर्भीक है वह दूमरे में भी भय क्या उपजायेगा ?

-४३८-

तुम समय हीमाँ, इस हेतु में तुम्हारे भा-बाप मरेंगे ।  
पावश उठे, इससे लिए सोल का टूटना हागा । बीज  
मरकर वृक्ष उगायगा ।

१६६/गूल्डि मन्थन

-४३६-

अहंभाव आदमी को सर्वांग बनाता है । समपण व्यापक है और व्यापकता ही प्रबलता है ।

-४४०-

रोग मानने से बढ़ता है । रोग की सबसे अच्छी औषधि निराहार है ।

-४४१-

घडा की आज्ञा सदा सुननी चाहिये और सभी उनको उत्तर नहीं देना चाहिए ।

-४४२-

विपत न पड़े तो भाव हमारी कमे पुले ।

-४४३-

मौत ऐसी तुच्छ वस्तु है कि उमका चाहना लज्जास्पद है । चाहने को मरे पाग उसमे बडी वस्तु है । जीवन है और मास है । मौत मास नहीं है और मैं मात नहा



मागता पर मौत मोक्ष म रुवावट भी क्यों है ?

-४४४-

अपने निज के विश्वास की श्रुति के कारण दूसरे की भालोचना की वृत्ति जगी होगी ।

-४४३-

आकाशा भयाम्यता का लक्षण है ।

-४४६-

दोगी से उपहास्य वस्तु दूगरी नहीं है और पागल यह जा अपने को सबसे अक्लमन्द गिनता है ।

-४४७-

अपन को केन्द्र मानने से ही परेगानी होती है । मैं हूँ—  
यही मेरे दुःख का कारण है ।

-४४८-

अहता बढ़कर दूगर की अज्ञता का पुनीती दिये बिना रह

१४८/मूर्ति मखन

नहीं सकता ।

-४६-

भविष्य को जानने की जरूरत नहीं है वह अज्ञेय है उसीमें उसका रस है । भविष्य होता नहीं है उसका हम निर्माण करना होता है । यही हमारी मनुष्यता है । भविष्य जान जाय तो वर्तमान की तत्परता हमारी शिथिल हो जाये ।

-४७०-

धूमना फिरना मस्तिष्क को विगद करने में साधारणतया उपयोगी ही है । उससे सहानुभूति व्यापक होती है और जी खुलता है ।

-४७१-

आदर सघन होकर दायद भातक हो आता है ।

-४७२-

विवास एक वह किया है, वह धर्म है, जिसमें हम विदक पूर्वक सहायोगी होने के लिए हैं ।

-४५३-

ऊँचे चढन म स्वाद तभी तक है जब तक कुछ नीचे रह ।

-४५४-

सबका वह मिलाता है जो योग्य है । इतना बड़ा ग्रहाड अनियम से नहीं बन सकता । ग्रह और नक्षत्र पूर्य और ऋतु पृथ्वी और पिण्ड सब अपनी कक्षा में और मर्यादा में है ।

-४५५-

पवित्रता गन्ध रसि और अग्नि का राधा है ।

-४५६-

आगा है इमतिग अगताप है । भविष्य क प्रति उत्पत्ता है क्योंकि धतमान क प्रति तीव्र अनृप्ति है ।

-६१७-

आ मीयता अन्त्य सहानुभूति को गानता है । उमम

१५ मूर्ति मषयन

व्यक्ति धींचता और छीनता नहीं देता और बरसाता है । आत्मीयता मिटाती है, अहता काटती है ।

-४५८-

अहकार आत्म के बचाव का जरिया है वह अपनी हीनता के दगाव में बचन के प्रयत्न का स्वरूप है । उसमें व्यक्ति अपने में ही उभरा हुआ दीगना चाहता है ।

-४५९-

भाग लेपिन पर जाते हैं । जिमको सदाचारी समझ लिया जाता है, वह अपने को दुराचारी समझना छुड़ देता है । हम उस यह समझने में मदद देते हैं और फलतः वह दम्भी बनता है । हम सगृह आज देखते हैं कि जो भद्र माने जाते हैं उसी श्रेणी के लोग में वस्तुतः अच्छे बनने की चिन्ता की सबसे अधिक जरूरत है ।

-४६०-

उपकार तो नाप-जोल करने की और देगन की चीज नहीं है । वह साबित करने की भी चीज नहीं है और न गिनान की ।

पिदिष/१५१

-४६१-

दीखने को जहाँ नहीं दीखती लेकिन ऊँचे दीखने के लिये नीचे की जहाँ बहुत आवस्यक है ।

-४६२-

स्वप्न अर्थात् छल स्वप्न अर्थात् सत्य । स्वप्न निरी छलना है अगर हमारी श्रद्धा शिथिल है और वही सत्य है यदि श्रद्धा दृढ़ है ।

-४६३-

दूरी मोह पदा धरतो है । दूरी मिट जाय ता सुन्दरता के बोध के लिए गु जाइग नही रहगी ।



\*

## सकेतिका

गुह्य मरिचा	१६ जय	३६ ज०क० ६
१ पूर्वो	२० प्रस्तुत	४० सोच
२ प्रस्तुत	२१ प्रस्तुत	४१ वाम
३ प्रस्तुत	२२ श्रय	४२ त्याग
४ पूर्वो	२३ जय	४३ ज०क० २
५ सोच	२४ ज०क० ६	४४ प्रस्तुत
६ सोच	२५ म	४५ ज०क० १
७ गोष	२६ ज०क० ६	४६ ज० क० ६
८ प्रस्तुत	२७ श्रय	
९ पूर्वो	२८ प्रस्तुत	राय नीति
१० पूर्वो	२९ ज० क० ६	
११ म्यनीत	३० मयन	४७ जय
१२ प्रस्तुत	३१ पूर्वो	४८ जय
१३ प्रस्तुत	३२ मयन	४९ वाम
१४ गोष	३३ जय	५० जय
१५ प्रस्तुत	३४ प्रस्तुत	५१ जय
१६ पूर्वो	३५ म	५२ साध
१७ प्रस्तुत	३६ पूर्वो	५३ प्रस्तुत
१८ पूर्वो	३७ जय	५४ प्रस्तुत
	८ जय	५५ जय

२५ कल्याणी	२७५ ध्यतात	३०८ परल्ल
२५६ सोच	२७६ पूर्वो	३०९ ज०क २
२५७ साच	२७७ इत	३१० थ य
२५८ सोष	२७८ जय	३११ प्रस्तुत
२५९ साच	२७९ प्रस्तुत	३१२ परल्ल
२६० ध्यतीत	२८० ज क ८	३१३ जय
२६१ सोच	२८१ मुनीता	१४ थय
२६२ साच	२८२ प्रस्तुत	३१५ परल्ल
२६३ सोच	२८३ तयाग	३१६ मयन
२६४ ध्यतीत	२८४ मयन	३१७ विवत
२६५ सोच	२८५ मयन	३१८ विवत
२६६ मुनीता	२८६ मयन	३१९ थ य
२६७ जे क० १	२८७ मुमता	३२० काम
२६८ इत	२८८ काम	३२१ थ य
२६९ ज क० १	२८९ थय	३२२ थय
२७० ज०क १	२९० थय	३२३ थय
२७१ त	२९१ य व	३२४ ज०क० १
२७२ इत	२९२ काम	३२५ ज क० १
२७३ ज क० ६	२९३ पूर्वो	३२६ कल्याणी
२७४ ज०क० ६	२९४ ध्यतीत	३२७ जय
२७५ पूर्वो	२९५ पूर्वो	३२८ मुनीता
६६ प्रस्तुत	२९६ परल्ल	३२९ जय
२७७ पूर्वो	२९७ प्रस्तुत	३३० ज क० ४
२७८ प्रस्तुत	२९८ गाच	३३१ तयाग
२७९ थ य	२९९ परल्ल	३३२ जय
२८० मुनीता	३०० प र	३३३ ज०क २
२८१ मयन	३०१ सोच	३३४ ज क० १
२८२ इत	०२ गाच	३३५ य व
२८३ प्रस्तुत	३०३ प्रस्तुत	३३६ पूर्वो
	३०४ प्रस्तुत	३३७ पूर्वो
ध्यवितारक समाप्त	३३५ थय	३३८ जय
२७४ प्रस्तुत	३०६ थय	३३९ मयन
	३०७ थ य	३४० ज०क० १





४२४ मुनीना  
 ४३५ ज०क० १  
 ४३६ विवत  
 ४३७ मुनीना  
 ४३८ ज० क० ७  
 ४३९ प्रस्तुत  
 ४४० ज०क० २  
 ४४१ ज०क० २  
 ४४२ ज० क० ४  
 ४४३ ज० क० १

४४४ मोष  
 ४४५ पूर्वो  
 ४४६ पूर्वो  
 ४४७ अय  
 ४४८ पूर्वो  
 ४४९ श्रेय  
 ४५० प्रस्तुत  
 ४५१ व्यतीत  
 ४५२ प्रस्तुत  
 ४५३ मुषदा

४५४ व्यतीत  
 ४५५ काम  
 ४५६ य वे  
 ४५७ मोष  
 ४५८ य०वे  
 ४५९ ज० क० ६  
 ४६० ज०क० १  
 ४६१ मयन  
 ४६२ मुषदा  
 ४६३ मयन



इन/इनस्तन ( निबन्ध )  
 कल्याणी/कल्याणी ( उपन्यास )  
 काम०/काम प्रेम परिवार ( प्रश्नोत्तर )  
 जय०/जयवधन ( उपन्यास )  
 ज० क० १/जनेद्र की कहानियाँ

प्रथम भाग

ज० क० २/	द्वितीय भाग
ज० क० ३/	तृतीय भाग
ज० क० ४/	चतुर्थ भाग
ज० क० ५	पाचवा भाग
ज० क० ६/	छठा भाग
ज० क० ७/ ,	सातवा भाग
ज० क० ८/	आठवा भाग
ज० क० ९/	नवा भाग

त्याग/त्याग पत्र ( उपन्यास )  
 परम्य/परम्य ( उपन्यास )  
 पूर्वो/पूर्वोत्पद्य ( निबन्ध )  
 प्रस्तुत/प्रस्तुत प्रश्न ( प्रश्नोत्तर )  
 मघन,मघन ( निबन्ध )  
 य० व/य घोर वे ( निबन्ध )  
 विधन,विधन ( उपन्यास )  
 क्तीति/क्ष्तीति ( उपन्यास )

४३४	मुनीना	४४४	सोच	४५४	व्यतीत
४३५	जै व० १	४४५	पूर्वो	४५५	वाम
४३६	विषत	४४६	पूर्वो	४५६	ये वे
४३७	मुनीना	४४७	श्रेय	४५७	सोच
४३८	जै व० ७	४४८	पूर्वो	४५८	ये०वे
४३९	प्रस्तत	४४९	श्रेय	४५९	जै०व० ६
४४०	ज व० २	४५०	प्रस्तुत	४६०	ज०व० १
४४१	जै०क० २	४५१	व्यतीत	४६१	मंघन
४४२	ज०व० ४	४५२	प्रस्तुत	४६२	मुसदा
४४३	ज०व० १	४५३	मुसदा	४६३	मघन

■ ■ ■

इत/इतस्तत (निबन्ध)  
 कल्याणी/कल्याणी (उप्यास)  
 काम०/काम, प्रेम परिवार (प्रश्नोत्तर)  
 जय०/जयवर्धन (उप्यास)  
 ज० व० १/जनद्र की कहानियाँ

प्रथम भाग

ज० व० २/

ज० व० ३/

ज० व० ४/

ज व ५

ज व० ६/

ज० व० ७/

ज व० ८/

ज व ९/

त्याग/त्याग पत्र (उप्यास)

परम/परम (उप्यास)

पूर्वो/पूर्वोन्मय (निबन्ध)

प्रस्तुत/प्रस्तुत प्रश्न (प्रश्नोत्तर)

मधन, मधन (निबन्ध)

य व/य घोर व (निबन्ध)

विद्यत, विद्यत (उप्यास)

व्यनात, व्यनात (उप्यास)

द्वितीय भाग

तृतीय भाग

चतुर्थ भाग

पाचवा भाग

छटा भाग

सातवा भाग

आठवा भाग

नवा भाग

श्रय/साहित्य का श्रय और प्रश्न ( निबंध )  
मुसदा/मुसदा ( उप-यास )  
मुनीता 'मुनीता ( उप-यास )  
सोच/सोच विचार ( निबंध )

